इसरो की कहानी

वसंत गोवारीकर

अनुवाद : सुनील केशव देवधर ■ चित्रांकन : अरुप गुप्ता

ISBN 978-81-237-6203-6

पहला संस्करण : 2011 (*शक* 1933)

मूल © वसंत गोवारीकर

अनुवाद © नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

Original : Isro Ki Kahani (*Hindi*)

₹ 85.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II

वसंत कुंज, नई दिल्ली-110 070 द्वारा प्रकाशित

नेहरू बाल पुस्तकालय

इसरो की कहानी

वसंत गोवारीकर

अनुवाद
सुनील केशव देवधर

चित्रांकन
अरुप गुप्ता

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

आपकी-मेरी बात

बात कई साल पहले की है। आपकी, मेरी, हम सबकी। भारत में आरंभ हुए नए उत्सव की। अथक परिश्रम की, दुर्दम्य इच्छा शक्ति की और "यह हम भी कर सकते हैं" ऐसा आत्मविश्वास जगाने वाली मानसिक प्रक्रिया की। यह भारत के 'प्रक्षेपास्त्र' के विकास की कथा है।

सन् 1963 में भारत ने 'थुंबा' से पहला 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपित किया। तब मैं इग्लैंड में था। विश्वविद्यालय से अध्ययन पूरा कर वैज्ञानिक के रूप में मैंने पहले ही कार्य करना शुरू कर दिया था। 'लंदन टाइम्स' के एक कोने में 'थुंबा' के 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपण का समाचार था, वह समाचार मेरी नजर से छूटा नहीं था। 'प्रक्षेपास्त्र' के प्रति आकर्षण बचपन से ही दीपावली के आकाशबाण के कारण बहुतों को होता है, मुझे भी था। यह

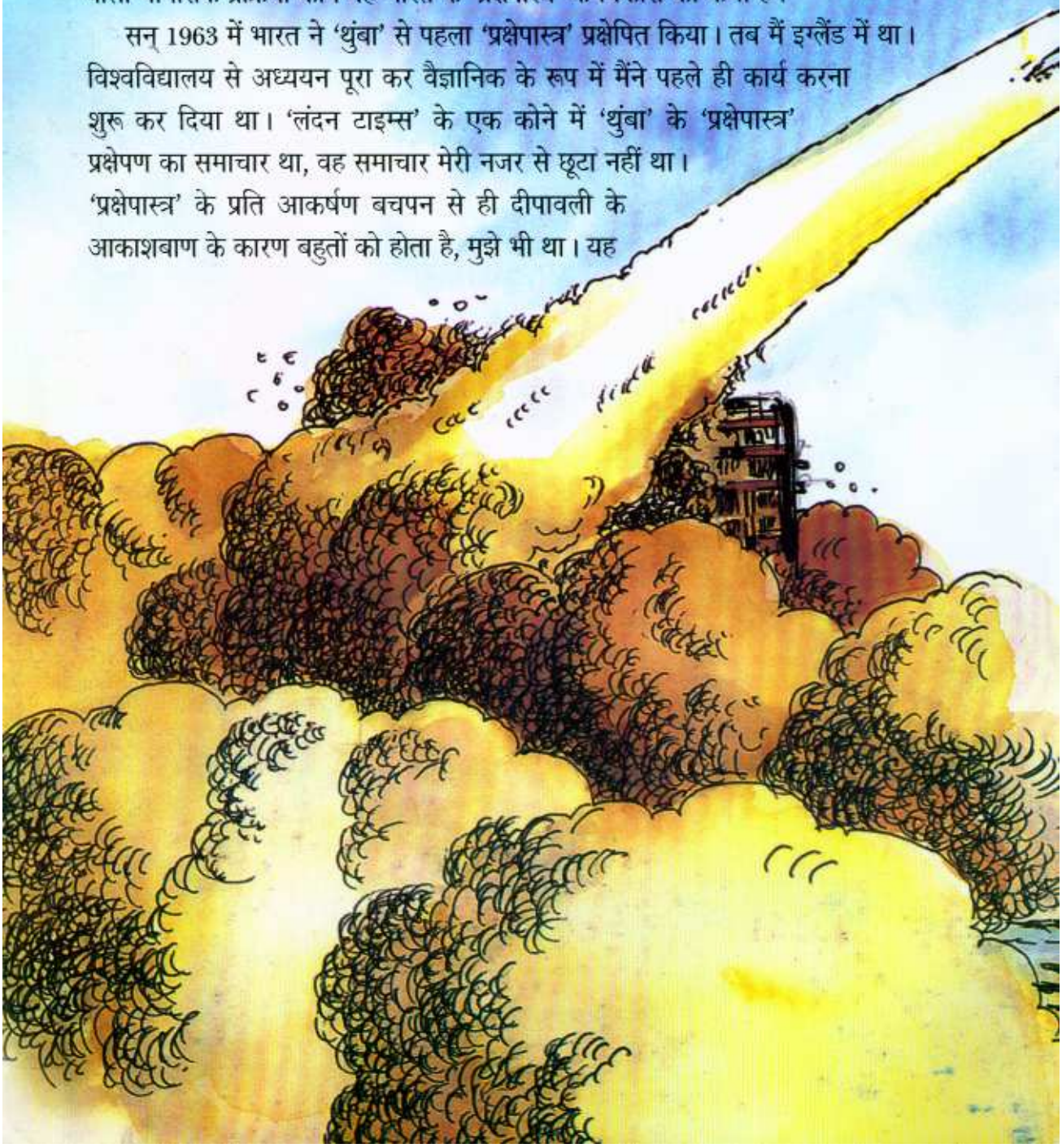

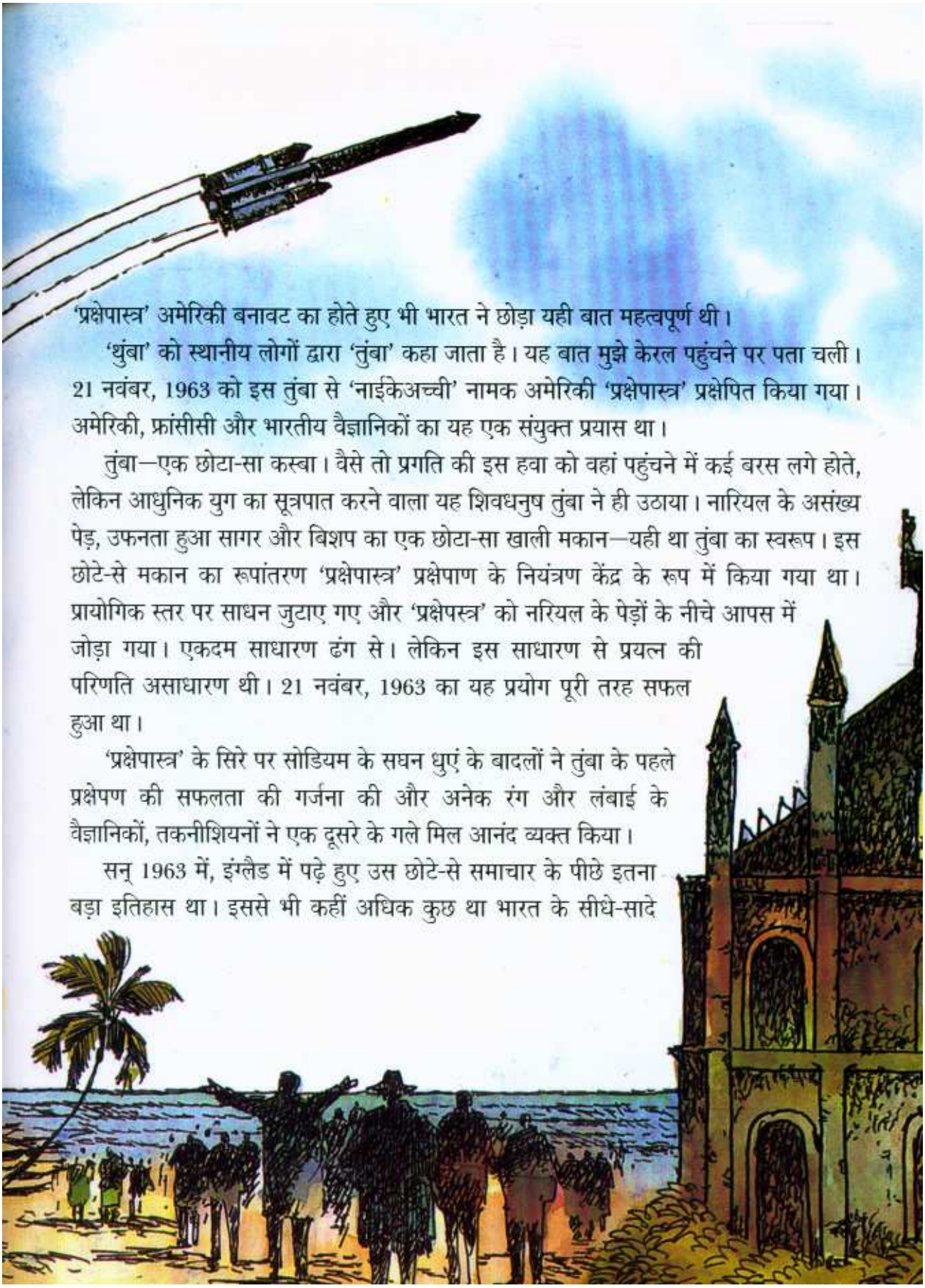

'प्रक्षेपास्त्र' अमेरिकी बनावट का होते हुए भी भारत ने छोड़ा यही बात महत्वपूर्ण थी।

'थुंबा' को स्थानीय लोगों द्वारा 'तुंबा' कहा जाता है। यह बात मुझे केरल पहुंचने पर पता चली। 21 नवंबर, 1963 को इस तुंबा से 'नाईकेअच्ची' नामक अमेरिकी 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपित किया गया। अमेरिकी, फ्रांसीसी और भारतीय वैज्ञानिकों का यह एक संयुक्त प्रयास था।

तुंबा—एक छोटा-सा कस्बा। वैसे तो प्रगति की इस हवा को वहां पहुंचने में कई बरस लगे होते, लेकिन आधुनिक युग का सूत्रपात करने वाला यह शिवधनुष तुंबा ने ही उठाया। नारियल के असंख्य पेड़, उफनता हुआ सागर और बिशप का एक छोटा-सा खाली मकान—यही था तुंबा का स्वरूप। इस छोटे-से मकान का रूपांतरण 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपाण के नियंत्रण केंद्र के रूप में किया गया था। प्रायोगिक स्तर पर साधन जुटाए गए और 'प्रक्षेपस्त्र' को नरियल के पेड़ों के नीचे आपस में जोड़ा गया। एकदम साधारण ढंग से। लेकिन इस साधारण से प्रयत्न की परिणति असाधारण थी। 21 नवंबर, 1963 का यह प्रयोग पूरी तरह सफल हुआ था।

'प्रक्षेपास्त्र' के सिरे पर सोडियम के सघन धुएं के बादलों ने तुंबा के पहले प्रक्षेपण की सफलता की गर्जना की और अनेक रंग और लंबाई के वैज्ञानिकों, तकनीशियनों ने एक दूसरे के गले मिल आनंद व्यक्त किया।

सन् 1963 में, इंग्लैड में पढ़े हुए उस छोटे-से समाचार के पीछे इतना बड़ा इतिहास था। इससे भी कहीं अधिक कुछ था भारत के सीधे-सादे

प्रयत्न में। डॉ. होमी भाभा, डॉ. विक्रम साराभाई जैसे कर्तव्य-परायण और स्वप्नद्रष्टा वैज्ञानिक भारत के भविष्य का स्वप्न देख रहे थे। आपाधापी के इस युग में अपने देश की अस्मिता की बुनियाद मजबूत कर मातृभूमि को निष्कंप रखने का उनका प्रयत्न था। विपरीत परिस्थितियों में भी देश के स्वाभिमान को बचाए रखने की मानसिकता उनमें प्रज्वलित थी। भाभा और साराभाई के मन में 'तुंबा' का अग्निबाण प्रक्षेपण एक घटना मात्र नहीं थी, बल्कि यह एक प्रक्रिया की शुरुआत थी।

इस प्रक्रिया के अंतिम छोर की टोह लेना वैसा ही दुष्कर था, जैसे नदी का उद्गम खोजना। इस प्रक्रिया के मार्ग में बहुत बड़ी वीर कथा भी छुपी थी। काल्पनिक लगे, इतनी रोमांचकारी, लेकिन काल्पनिक नहीं, बल्कि वास्तविक रससिक्त। साराभाई और उन जैसे बनने का सपना देखने वाले हम-आप जैसे अनेक। साराभाई की साकार की हुई तुंबा की यह कहानी हमारी आपकी कहानी है। इसमें हम समाहित हैं इसीलिए वस्तुनिष्ठ रूप में इसे कहानी कह पाना कठिन है पर जैसा संभव होगा, वैसा बताने का प्रयत्न करता हूं।

2. तुंबा ही क्यों?

तुंबा—एक छोटा-सा कस्बा। केरल के दक्षिणी छोर पर समुद्र के किनारे बसा हुआ। मच्छीमारों का तुंबा, नरियल के जंगल से सटा हुआ, एक सुस्त एवं आरामतलब गांव। न किसी के लेने में न देने में। लेकिन 21 नवंबर, 1963 के दिन हड़बड़ाकर जैसे जाग उठा और देखते-देखते यह कस्बा विश्व के अंतरिक्ष नक्शे पर झलकने लगा। मौसम का अध्ययन करने के लिए 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपण केंद्र का समुद्र के किनारे पर होना आवश्यक है। मौसम के अलग-अलग स्तरों तक पहुंचने वाला 'प्रक्षेपास्त्र' अंततः समुद्र में गिरे यह इसके पीछे का विचार है। लेकिन, हमारे देश में समुद्र किनारे पर बसे न जाने कितने ही गांव हैं, फिर उनमें से तुंबा का ही चयन क्यों?

इसके पीछे एक कारण है, एकदम वैज्ञानिक कारण। तुंबा चुंबकीय विषुववृत्त पर स्थित है। यह 'विषुववृत्त' भौगोलिक विषुववृत्त से अलग है। चुंबकीय विषुववृत्त पर, लौहचुंबक की सुई लटकाई जाए तो वह पलटती नहीं, आड़ी रहती है। इस प्रदेश के नब्बे से एक सौ दस किलो मीटर की ऊंचाई पर विषुववृत्तीय विद्युत प्रवाह चालू रहता है।

मौसम के कुछ परिवर्तनों से यह विद्युत प्रवाह संबंधित होता है। इसीलिए इस प्रवाह और इसके बिखराव के प्रति विश्व के अंतरिक्ष वैज्ञानिकों को गजब का आकर्षण है।

ऐसे अंतरिक्ष वैज्ञानिकों की जिज्ञासा पूर्ति और अनुसंधान के साधन के रूप में तुंबा 'इक्वेटोरियल रॉकेट लांचिग स्टेशन' (टीइआरएलएस) की स्थापना हुई। यहां होने वाले अनुसंधान का स्तर अंतर्राष्ट्रीय स्तर का हो इस बात पर पहले से जोर दिया गया। अलग-अलग देशों के वैज्ञानिकों द्वारा सहयोगात्मक प्रयोग यही अपेक्षा थी। मौसम के बारे में मिलने वाली सूचना का आदान-प्रदान हो, यह भी अपेक्षित था। संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई भी सदस्य शांति के लिए अंतरिक्ष अनुसंधान कर सके, तुंबा के इस अंतरिक्ष केंद्र को प्रस्थापित करने की ऐसी भावना थी।

ऐसे तुंबा के इन प्रयोगों ने सफलता को भरपूर प्रमाणित कर दिया था। इससे संबंधित सभी लोगों को नया उत्साह और स्फुरण मिला था।

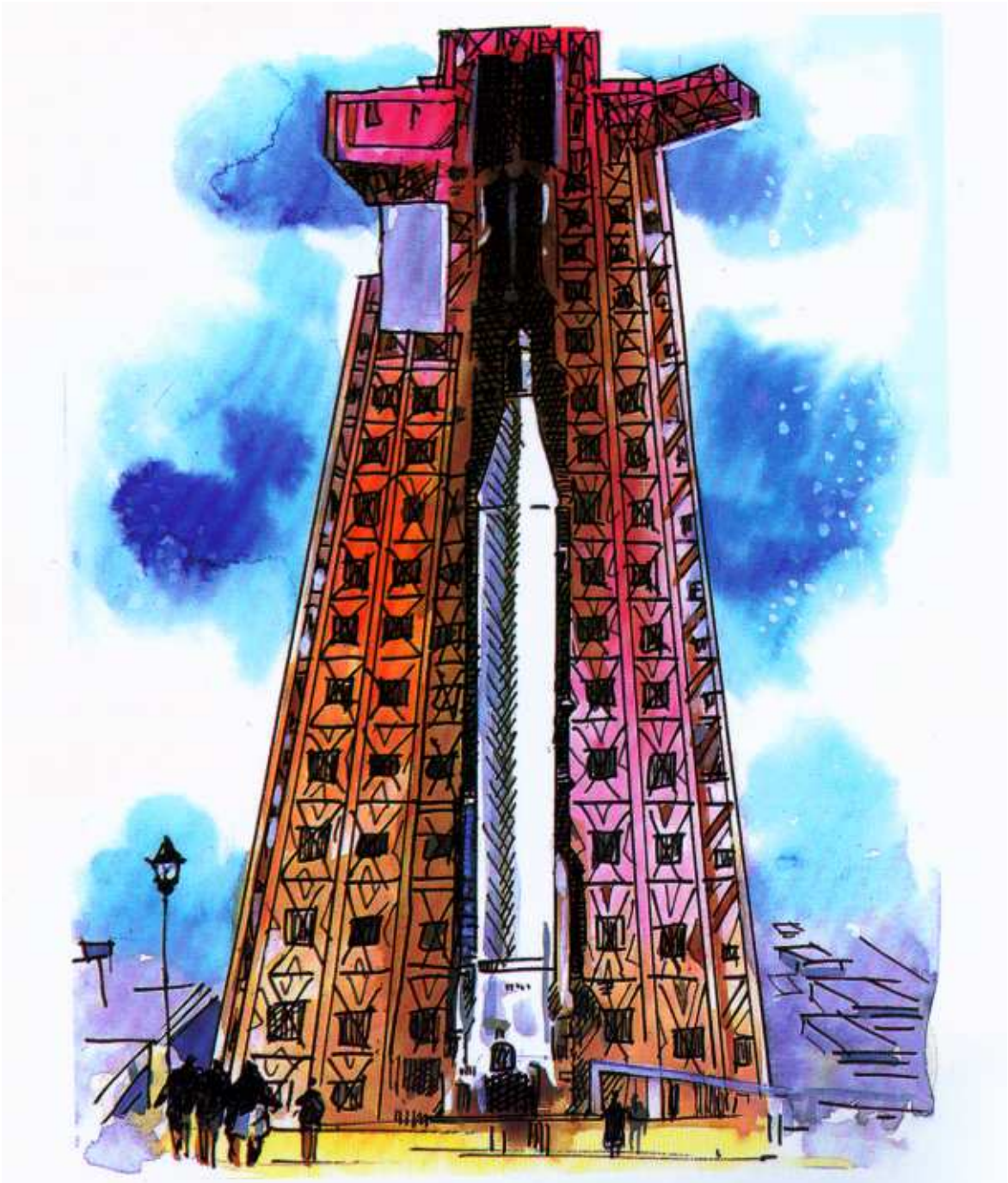

सन् 1963 में पढ़े हुए एक छोटे से समाचार की इतनी बड़ी प्रक्रिया मुझे अनुभव हुई। लेकिन यहां उसके बाद होने वाले अनेक प्रयोगों में मेरी भी हिस्सेदारी होगी इसकी धुंधली-धुंधली सी कल्पना भी मेरे मन में नहीं थी।

3. विक्रम साराभाई से मुलाकात

कुछ बातें एकदम अनपेक्षित रूप से घटित होती हैं। हम खुद अचंभित हो जाएं इस हद तक। जिनके बारे में हमने सपने में भी नहीं सोचा, वे बातें साकार रूप में हमारे सामने होती हैं। वह एक सुखद अनुभव होता है। तुंबा परियोजना के संदर्भ में भी ऐसा ही हुआ। विश्व के अंतरिक्ष मानचित्र पर तुंबा को प्रतिष्ठा मिलेगी, यह बात जैसे तुंबा के मन में भी नहीं थी, वैसे ही तुंबा परियोजना के बारे में मुझसे कोई पूछताछ होगी, यह मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। मुझसे संपर्क स्थापित करने वाले दूसरे और कोई नहीं, बल्कि भारत के अंतरिक्ष अनुसंधान के पितामह स्वयं डॉ. विक्रम साराभाई थे।

सन् 1966 में ब्रिटेन में डॉ. जीवराज मेहता भारत के राजदूत थे। उनका मेरे प्रति लगाव था। एक दिन उनका संदेश मुझे मिला, "अगले हफ्ते मिल सकोगे क्या?"

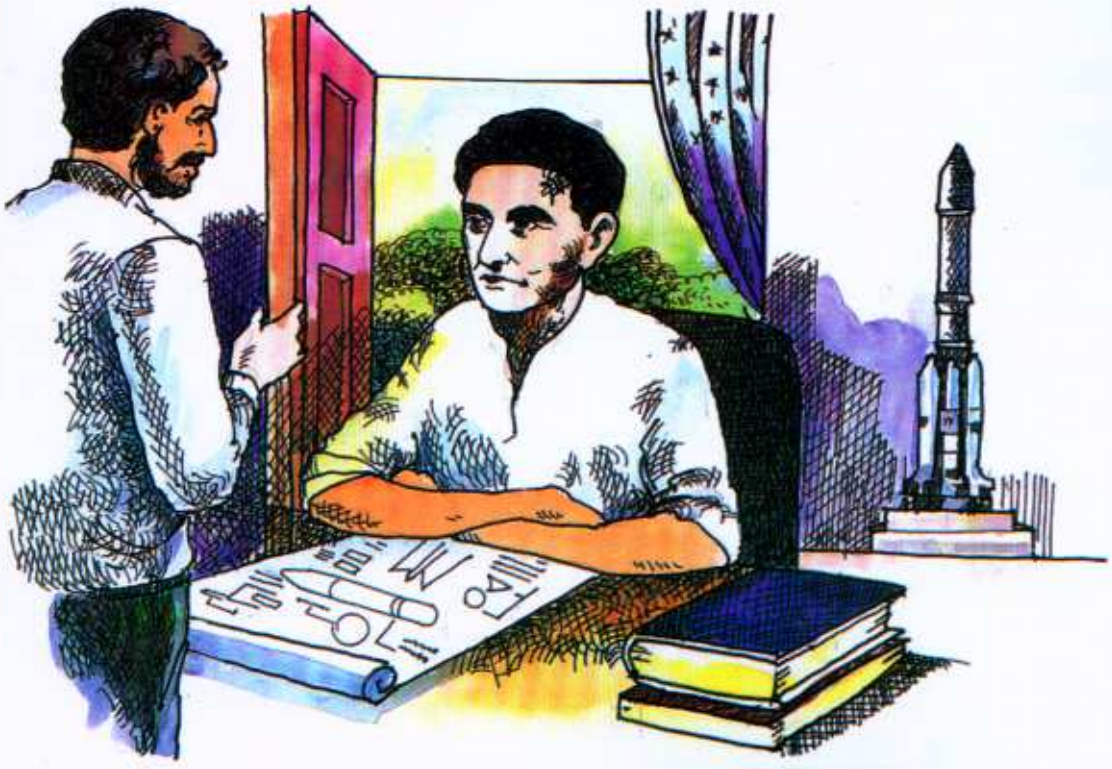

हमने भेंट का समय तय किया और मैं लंदन पहुंचा। एक प्रसन्न और रुआबदार व्यक्तित्व से मेरी भेंट होनी थी, वे थे डॉ. विक्रम साराभाई जो जिनीवा से आए थे। डॉ. भाभा के बाद उन्हें अणु ऊर्जा आयोग का अध्यक्ष बनाया गया था। अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए स्थापित भारत की राष्ट्रीय समिति अणु ऊर्जा विभाग के अधीन थी। साराभाई इस समिति के भी अध्यक्ष थे। मैं साराभाई से पहली बार ही मिल रहा था। उनका अनौपचारिक व्यवहार और बातचीत प्रभावित करने वाली थी। उन्होंने मुझे रात्रि भोज पर बुलाया, तब मुझे पता चला कि धूम्रपान या मादक पेय उन्हें वर्ज्य थे। बातचीत के लिए विषयों की कमी नहीं थी। थाली में शाकाहारी खाना खाते समय, भारत के अंतरिक्ष अनुसंधान का स्वप्न उन्होंने मेरे सामने प्रस्तुत किया। अनेक स्तरों के प्रचंड प्रक्षेपास्त्र से बड़े-बड़े कृत्रिम उपग्रह अंतरिक्ष में पहुंचाने की उड़ान उसमें थी। तुंबा परियोजना उनकी अपेक्षाओं का एक छोटा-सा हिस्सा था। मगर जमीनी हकीकत कुछ और ही थी। भारत के 'प्रक्षेपास्त्र' एक स्तर के और छोटे थे। सौ मि.मी. के आसपास व्यास और सात सौ से आठ सौ मि.मी. की लंबाई—अतिशयोक्तिपूर्ण कहना हो तो दीवाली के आकाशबाण से थोड़े बड़े और उतने ही बिन भरोसे के। मजाक से उन्हें 'पेंसिल रॉकेट' कह सकते हैं। संक्षेप में भारत का 'प्रक्षेपास्त्र' उस समय मुश्किल से दस किलोग्राम वजन का था। एक क्रम का। नियंत्रण अथवा मार्गदर्शन के लिए कोई सुविधा भी नहीं। साराभाई को जो उपग्रह अपेक्षित था उसे पृथ्वी की परिक्रमा करते रहने के लिए साधारणतः 17 हजार किलोग्राम वजन के 'प्रक्षेपास्त्र' की आवश्यकता थी। अनेक स्तरों पर नियंत्रण और मार्गदर्शन सुविधा सहित। उड़ान हजार गुनी चाहिए थी—छोटी-मोटी नहीं। उस रात साराभाई के द्रष्टा होने के अनेक अनुभव मुझे हुए और यह वैज्ञानिक कितना विलक्षण है यह मुझे मालूम हुआ। देश के इतिहास और परंपरा की उन्हें गजब की पहचान थी। इस पहचान से निर्मित देश के उज्ज्वल भविष्य का विश्वास उनका अपना स्थायीभाव हो चुका था। इतना होते हुए भी अनेक कार्यक्रम भावनाप्रधान नहीं लगे। उनकी तार्किकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण निर्विवाद था। 'प्रक्षेपास्त्र' का आकार अभी के सौ मि.मी. व्यास की अपेक्षा दो सौ मि.मी., तीन सौ, चार सौ मि.मी. तक इस क्रम में बढ़ाने की योजना उन्होंने विस्तार से बताई। तकनीकी स्तर पर उसमें दोष ढूंढना मुश्किल था। उस विशाल काम में मैं शामिल होऊं, उन्होंने ऐसा आह्वान किया। चक्राकार पद्धति से 'प्रक्षेपास्त्र' का आकार और सामर्थ्य बढ़ाना अपरिहार्य है। इस काम में मैं स्वयं को झोंक दूं ऐसा उनका आग्रह था। मैं जब साराभाई के पास खाने पर गया तब समय साढ़े सात का था और अब आधी रात हो चली थी। फिर मिलना तय करके हमने विदा ली। तब मुझे एक विलक्षण अनुभूति हुई। नहीं जानता क्यों, कैसे? लेकिन 'रेब्रेडबरी' पुस्तक के लेखक के स्ट्रॉबेरी विंडो पुस्तक का नायक मुझे बार-बार

स्मरण हो रहा था। उस कहानी की पार्श्वभूमि याद आ रही थी। मनुष्य मंगल ग्रह पर जा बसा है और नायक अपने परिवार को पृथ्वी से दूर जाने का महत्व समझाता है। अपनी ही तंद्रा में सारे जगत से अलिप्त नजर से और धूसर संधिप्रकाश से भरे हुए आकाश की ओर देखकर वह कहता है, एक वक्त ऐसा आएगा कि सूर्य फूट जाएगा। पृथ्वी नष्ट हो जाएगी। लेकिन शायद मंगल यथावत् रहेगा और अगर मंगल भी नष्ट हुआ तो तब शायद प्लूटो साबुत बचेगा। मानव जीवन उस पर सुरक्षित रहेगा। दूर-दूर तक पहुंचने की अपनी क्षमता बढ़ती रहनी चाहिए। अब आया ध्यान में कि मनुष्य अधिकाधिक लंबी दूरी के 'प्रक्षेपास्त्र' क्यों छोड़ता चल रहा है।

केवल उस नायक की जगह मुझे विक्रम साराभाई का सुंदर चेहरा दिख रहा था। दूसरे किसी और संदर्भ में नहीं। केवल एक ही संदर्भ में कि चक्राकार पद्धति से भारत का अपने 'प्रक्षेपास्त्र' का आकार और सामर्थ्य बढ़ाना चाहिए। यह उनके निरीक्षण का निष्कर्ष। उसके कारण भले ही कुछ अलग थे, जिसमें तुंबा के 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपण भी मात्र एक घटना नहीं थी। यह तो था एक प्रदीर्घ सर्प की कुंडली-सी चक्राकार प्रक्रिया का प्रारंभ।

4. स्वदेश वापसी

कुल मिलाकर स्थिति में कुछ लयबद्धता थी। डॉ. साराभाई के प्रतिनिधित्व वाला भारत का अणु ऊर्जा कार्यक्रम जिस ब्रिटिश ढांचे पर आधारित था, उस हार्वेल के अणु ऊर्जा अनुसंधान केंद्र में वैज्ञानिक के रूप में मैंने कार्य किया था। रेलगाड़ी अथवा मोटर गाड़ी चलाने के लिए डीजल, पेट्रोल आदि से चलने वाले इंजिन जैसे होते हैं, वैसे ही 'प्रक्षेपास्त्र' के लिए भी इनकी आवश्यता होती है। ऐसे रॉकेट मोर्टर बनाने वाले ब्रिटिश सरकार के स्वामित्व वाले एक केंद्र में तीन वर्ष से मैं काम कर रहा था। भारतीय 'प्रक्षेपास्त्र' का आकार बढ़ाने के कार्यक्रम में साराभाई को मेरा यह अनुभव आवश्यक लगा। मुझे भी हिंदुस्तान लौटना था। कठिनाई सिर्फ कुछ ब्योरों की थी। इंग्लैंड में जहां मैं काम करता था उन्हें भी मेरा काम महत्वपूर्ण लगता था। वहां मैं अकेला ही विदेशी था फिर भी उन्होंने मेरा चयन किया था। मेरी राष्ट्रीयता भारतीय है यह सवाल उन्होंने कभी नहीं उठाया। ब्रिटिश सरकार ने अपने खर्चे पर मुझे हाल ही में अमेरिका भेजा था। अमेरिका से लौटने के बाद तरक्की देकर और एक महत्वपूर्ण करार कर, मेरा सम्मान ही किया था। उस करार के अनुसार यदि हमें एक-दूसरे से अलग होना हो, तो छह माह की पूर्व सूचना देना कानूनन अनिवार्य था। छह सौ में से केवल तीन लोगों पर यह कानूनी बंधन था, उनमें से मैं एक था। मेरा काम मुझे अच्छा लगता था और कार्य का माहौल भी। वहां काम करने वाले सभी बहुत मिल-जुलकर काम करते थे और आत्मीय मित्रों जैसे थे।

क्या करूं इस सोच में ही था कि डॉ. साराभाई का मुंबई से पत्र आया। वह किसी काम से मुंबई आने वाले थे और देर शाम उन्हें लंदन पहुंचना था। आने के दूसरे दिन रात को भारत वापस लौटना था। तब उन्होंने पूछा था कि क्या हम सुबह नाश्ते पर मिल सकते हैं?

मैं लंदन गया। उन्हें बहुत कुछ कहना था। पिछले तीन महीनों में हुई कार्य की प्रगति उन्होंने बताई। उसी तरह अगले कामों की दिशा भी बताई। यह सब इतने मन से था कि जैसे मैं उस कार्यक्रम का एक हिस्सा था। अपने 'प्रक्षेपास्त्र' घनप्रणोदक यानी ईंधन पर चलते थे। 'प्रक्षेपास्त्र' के कुल वजन का तकरीबन अस्सी प्रतिशत वजन उसमें स्थित प्रणोदक यानी ईंधन का होता है।

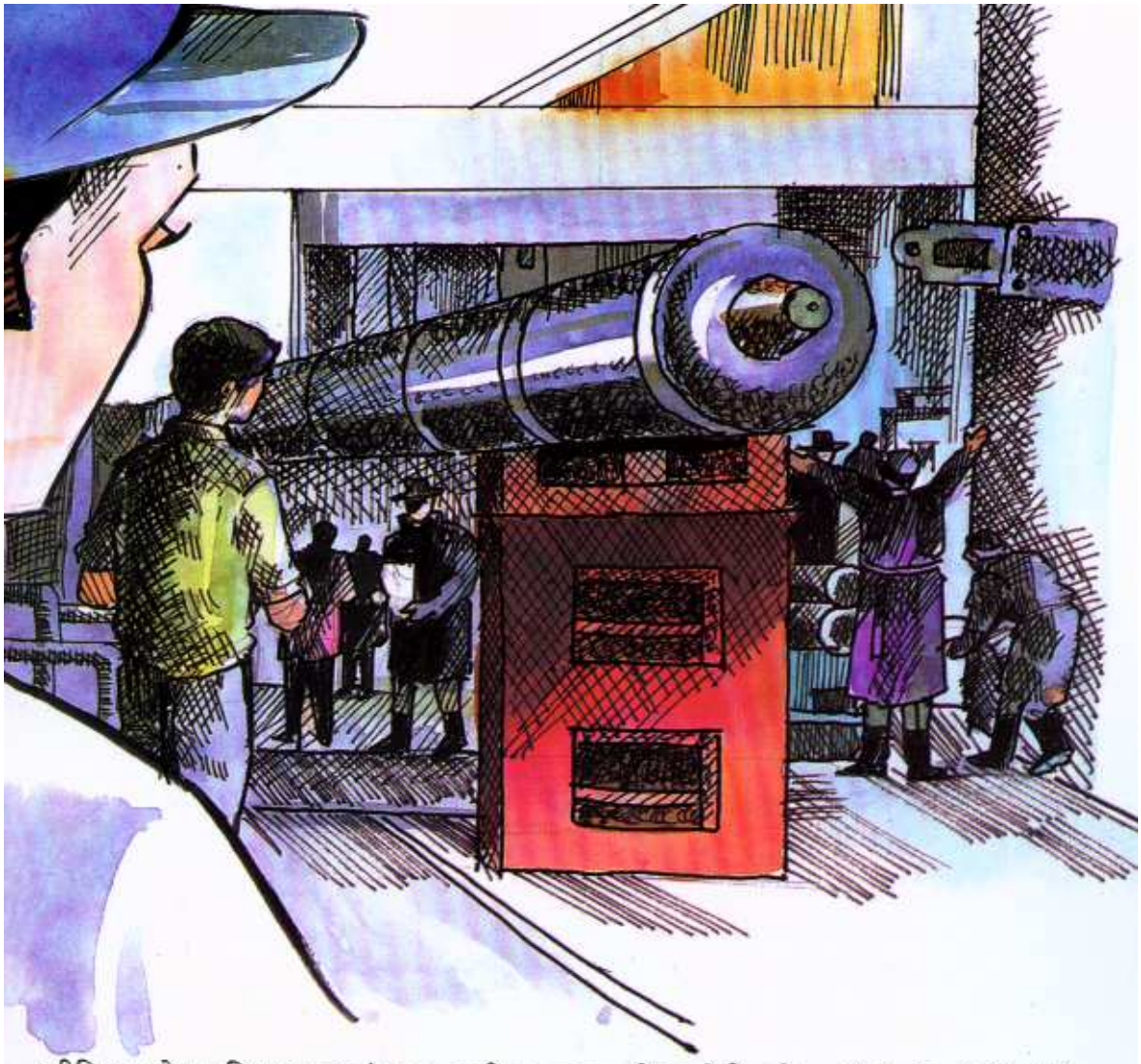

इसीलिए प्रणोदक विकसन अत्यंत महत्व की शाखा समझी जाती है। ईंधन की जिम्मेदारी मैं लूं, ऐसा उन्होंने सुझाया। सच कहूं तो यह मेरा विषय नहीं था। मैंने यह बताया भी। लेकिन हमें अभी बहुत नीचे से ऊपर जाना है। उनका नजरिया था कि इस नए दौर में शुरुआती लोगों को नई-नई बातें सीखने का मजा है।

एक-डेढ़ घंटे बाद उनसे कोई मिलने आया। तब मैंने उनसे विदा ली। सब कुछ बहुत प्राथमिक अवस्था में था। लेकिन इस सबमें न बताना जैसी कुछ चुनौती भी थी। उनका एक वाक्य बार-बार दिमाग में कौंध जाता था, वैज्ञानिक, तकनीशियन, प्रशासक और श्रमिक 'प्रक्षेपास्त्र' विकसित करने जैसे एक महत् उद्देश्य के लिए जब इकट्ठे होते हैं, तब सब मिलकर एक दिल से काम करने की नई संस्कृति का जन्म होता है। उसी एक दिल में मेरा भी दिल समा जाए, ऐसा मुझे लगा। मैंने अपने

वरिष्ठों से मुलाकात की। हमारे संबंध बहुत घनिष्ठ और मित्रवत् थे। तकरीबन साढ़े सात साल बाद भारत लौटने का दृढ़ होता अपना निश्चय मैंने उन्हें बताया। यह उन्हें मालूम नहीं, ऐसा भी नहीं। लेकिन किस तरह के काम का अवसर हिंदुस्तान में उपलब्ध है, इस विषय में उन्होंने आत्मीयता से पूछताछ की।

भारत के अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम के बारे में मैंने उन्हें थोड़ी जानकारी दी। तब वे बोले, 'तुमने लौट जाना तय किया हो, तो हम सबको बहुत बुरा लगेगा लेकिन तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध हम नहीं जाएंगे। लेकिन पूरा इत्मीनान किए बिना जाना मत और यदि लगे कि वहां जाकर तुमने भूल की तो तुम यहां हमारे पास वापस नहीं आओगे, यह मुझे वचन दो। आदमी को किस तरह जोड़कर रखा जाए, यह कोई अंग्रेजों से सीखे। एक समय उनके अधीन रहे देश उनके ही राष्ट्र परिवार में रहे, यह यों ही नहीं।

अप्रैल 1967 में भी मैं और छोटी अश्विनी मुंबई आए। सामान जहाज से आना था। 17 अप्रैल को मैं अहमदाबाद गया और 'तुंबा परियोजना' में प्रॉपलेंट इंजीनियर के रूप मे सामान्य पद पर नियुक्त हुआ। इतना सब छोड़कर, हमेशा के लिए भारत लौटने में मैंने कोई भूल की हो, इसलिए वापस जाऊं, ऐसा मुझे सपने में भी नहीं लगा।

5. महान वैज्ञानिक, महान व्यक्तित्व

वैज्ञानिक जब वरिष्ठ होता जाता है, तब उसका काम प्रयोगशाला तक सीमित नहीं रहता। उसे औरों का भी मार्गदर्शन करना होता है। अलग-अलग समितियों का काम करना होता है। औद्योगिक और कृषि क्षेत्र की शास्त्रीय समस्याओं का निदान खोजना होता है। यह करते-करते उसका बहुत-सा समय प्रबंधन में ही चला जाता है। जिम्मेदारियों के अनेक सेहरे बांधे घूमना उसके लिए अपरिहार्य हो जाता है। ऐसा जब होता है, तब वह वैज्ञानिक अपने खुद के विषय पर भी कुछ ध्यान दे, ऐसा विक्रम साराभाई हमेशा कहते और अगर ऐसा किया जाए, तो 'आराम कुर्सी' के वैज्ञानिक के रूप में उसका रूपांतरण नहीं होगा। प्रयोगशाला के युवा कार्यकर्ताओं की मानसिकता से उसका संवाद बना रहेगा, ऐसा भी कहते थे।

इसी के अनुसार अणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष, भारत सरकार के प्रधान सचिव, अंतरिक्ष अनुसंधान समिति, अहमदाबाद की भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला के संचालक जैसी कई जिम्मेदारियों का सेहरा संभालते हुए डॉ. साराभाई के स्नातकोत्तर अनुसंधान करने वाले कुछ शोध-छात्र उनके साथ होते थे। साराभाई अक्सर शनिवार और रविवार को अहमदाबाद आते थे। उनके शोध छात्रों और त्रिवेंद्रम से आने वाले हम जैसे अनेक लोगों के लिए भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला (पी आर एल) का कोना-कोना शनिवार और रविवार की रात प्रकाश से जगमगा जाता था।

अंतरिक्ष अनुसंधान की राष्ट्रीय समिति का काम केंद्र सरकार के अणु ऊर्जा विभाग ने पी आर एल को सौंपा था। पी आर एल का अपना खुद का खर्च थोड़ा ही यानी दो-एक लाख का होगा लेकिन उन्हें सौंपे गए अंतरिक्ष अनुसंधान राष्ट्रीय समिति के काम का खर्च करोड़ों के आस-पास था, इसके बावजूद नाक से नथनी बड़ी ऐसा हमें कभी नहीं लगा। यह सारा कार्य विस्तार विक्रम साराभाई ने संभाला। रईस खानदान में जन्मा यह वैज्ञानिक, जिनका पुश्तैनी मकान किसी राजमहल सा और टेलीफोन एक्सचेंज की जरूरत पड़े इतना विस्तृत और फैला हुआ था। लेकिन उनका खुद का रहन-सहन एकदम सीधा-सादा। अक्सर खादी का कुर्ता पाजामा और कोल्हापुरी चप्पल पहनकर

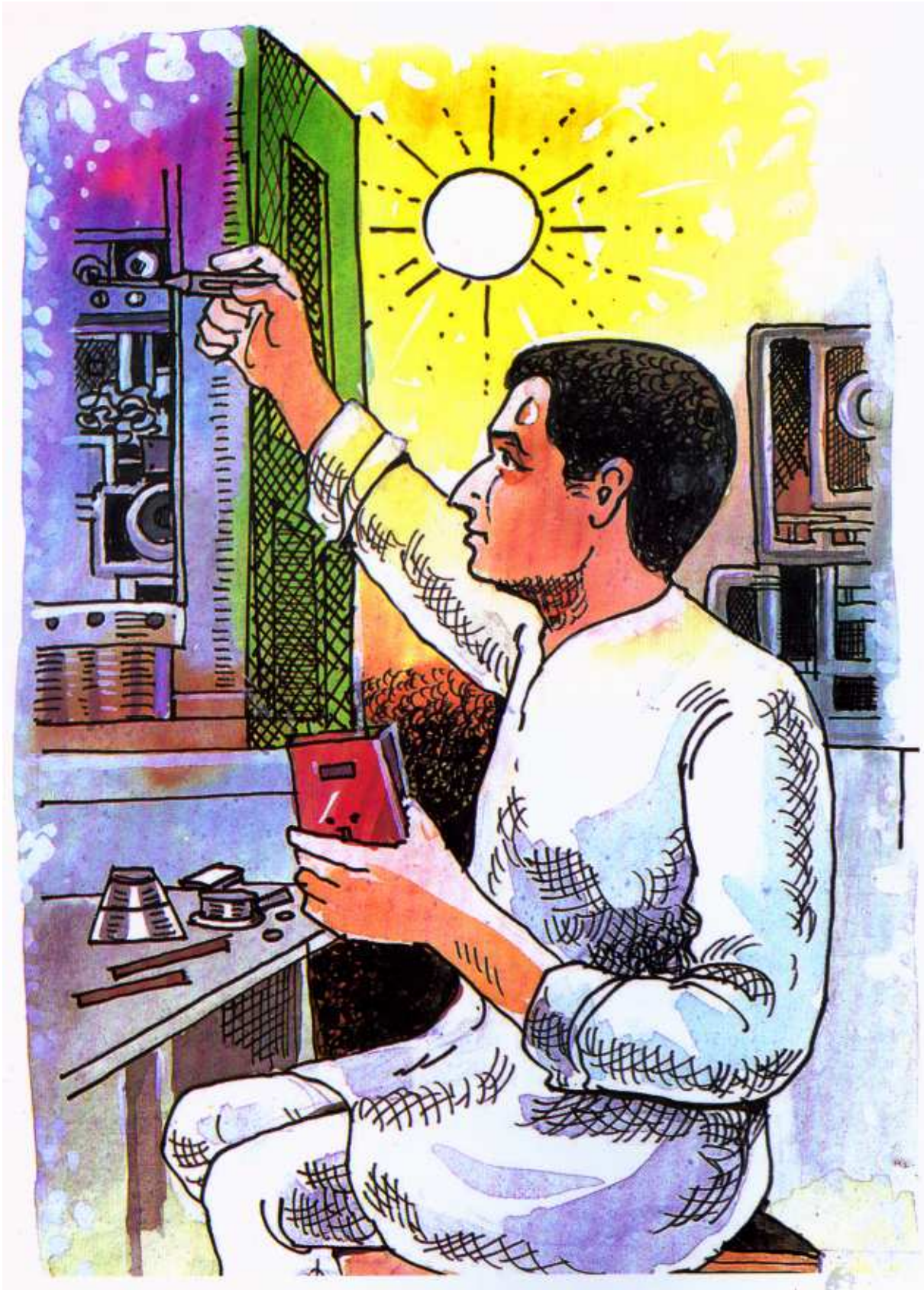

ही वे सब ओर घूमा करते। उनका पी आर एल का कार्यालय दस-बारह वर्ग मीटर का भी नहीं था।

प्रापलेंट इंजीनियर की हैसियत से हाजिरी लगाने मैं उनके कमरे में पहुंचा। सारा अहमदाबाद ही जलते प्रापलेंट जैसा गर्म था। झुलसाती धूप असह्य थी और साराभाई शांति से बैठे काम कर रहे थे। मुझसे रहा नहीं गया, मैंने कहा, "आपका समय और आपकी प्रवीणता बहुत मूल्यवान है। ऐसी भट्टी...कैसे सूझता है यह काम! कमरा क्या थोड़ा ठंडा नहीं किया जा सकता?"

वे हंसे और बोले "गर्मी क्या सिर्फ मेरे लिए है? वह तो पी आर एल के हरएक कार्यकर्ता के लिए है। उन सबके लिए भी जब तक वातानुकूलित कमरे में बैठने की सुविधा मैं नहीं कर पाता तब तक मैं अपना कमरा ठंडा करूं यह कहां तक उचित है?"

उनकी इन्सानियत मेरे दिल को छू गई। उनका मत और तर्क विवाद से परे था ऐसा नहीं, लेकिन उनका यह कहना उचित था। हमेशा तीसरे दर्जे के डिब्बे में यात्रा करने वाले गांधीजी और तमिलनाडु के अकाल के बाद चावल खाना छोड़ देने वाले शास्त्रीजी की एक परंपरा थी। उसी परंपरा की कसौटी पर कितना बड़ा वैज्ञानिक देश को मिला है, इसका मुझे फिर स्मरण हुआ। विज्ञान और समाज के बीच समन्वय स्थापित करने की चाह रखने वाले प्रत्येक वैज्ञानिक की मानसिकता ऐसी ही हो, यह तुंबा पहुंचने के बाद हमेशा ध्यान में रखने का प्रयत्न मैंने किया।

6. अलग संस्कृति निर्मित हो रही थी

ख्यातिलब्ध लोग जब किसी संस्था की नींव डालते हैं, तब वे पुराने लोगों को भी नए सिरे से बनाते हैं। इस नए रूप में बनते आदमियों में नई विचारधारा, नई कार्यपद्धति का प्रादुर्भाव होने लगता है। यह विचारधारा, यह कार्यपद्धति और संस्था का उद्देश्य यह सब मिलकर उस संस्था की संस्कृति बनाते हैं। इस संस्कृति में आदमी आदमी की पहचान कैसे बनाता है, इसका अहसास भी एक महत्वपूर्ण बिंदु है। हमेशा की बातों को देखने का दृष्टिकोण, प्रवृत्ति और हमेशा की समस्याओं पर काबू पाने की जिद आदि से उस संस्था के सामर्थ्य का पता चलता है।

तुंबा 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपण केंद्र की भी एक संस्कृति है इसका अनुभव मुझे पहुंचते ही तुरंत हुआ। कुल मिलाकर सौ-सवा सौ आदमियों में हम तीस-चालीस लोग अनुभव, योग्यता और वेतन के हिसाब से वरिष्ठ थे। ये सभी लोग इंजीनियर जाने जाते थे। हम सभी त्रिवेंद्रम से तुंबा की बस में बैठकर काम पर आते थे। वहां पूरी तरह ओहदा और जातीयता नहीं थी, ऐसा कह सकना कठिन था। हम में से कोई खड़ा होकर यात्रा कर रहा हो, तो दूसरा उठकर जगह देता था। लेकिन एक दूसरे के कंधे से कंधा लगाकर काम को पूरा करने की परंपरा थी। तब उसमें छोटे-बड़े का भेद नहीं था। वातावरण मेल-जोल का था और अगर कुछ ज्यादती हो जाए तो शिकवा-शिकायत करने की सबको छूट थी। वरिष्ठ और पद में बड़े लोग अधिक सहनशील हों, यह अपेक्षा थी। इस रूप में साराभाई के आगे हम कितनी भी उछलकूद मचाते वह तब हंसते बतियाते पीठ पर थपकी देते। दह हमारा शोर शराबा बर्दाश्त करते थे। उनके जाने के बाद हम सब अपने आदमियों के सामने 'साराभाई' होने का प्रयत्न करते।

'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपण केंद्र के लिए लंबी-चौड़ी जगह की जरूरत होती है। सुरक्षा की दृष्टि से 'प्रक्षेपास्त्र' आड़ा-तिरछा छूट जाए तो जहां तक हो सके अपनी ही हद में गिरे। तुंबा केंद्र के पास भी हजारों हेक्टेयर जगह थी। उसमें बंद पड़ा चालीस बरस पुराना चर्च था। एक हजार वर्ग मीटर का क्षेत्रफल वाला सेंट मेगडेलीना चर्च था। उस चर्च में ही पार्टीशन (विभाजक) डालकर हमारे बैठने की व्यवस्था की गई थी। दो मीटर ऊंची दीवार पर छत नहीं थी। सारे कमरों पर चर्च का ही छप्पर था। काम करते हुए चिड़ियां, कबूतर, गिलहरियां यहां-वहां उड़ती-बैठतीं, विहार करती थीं।

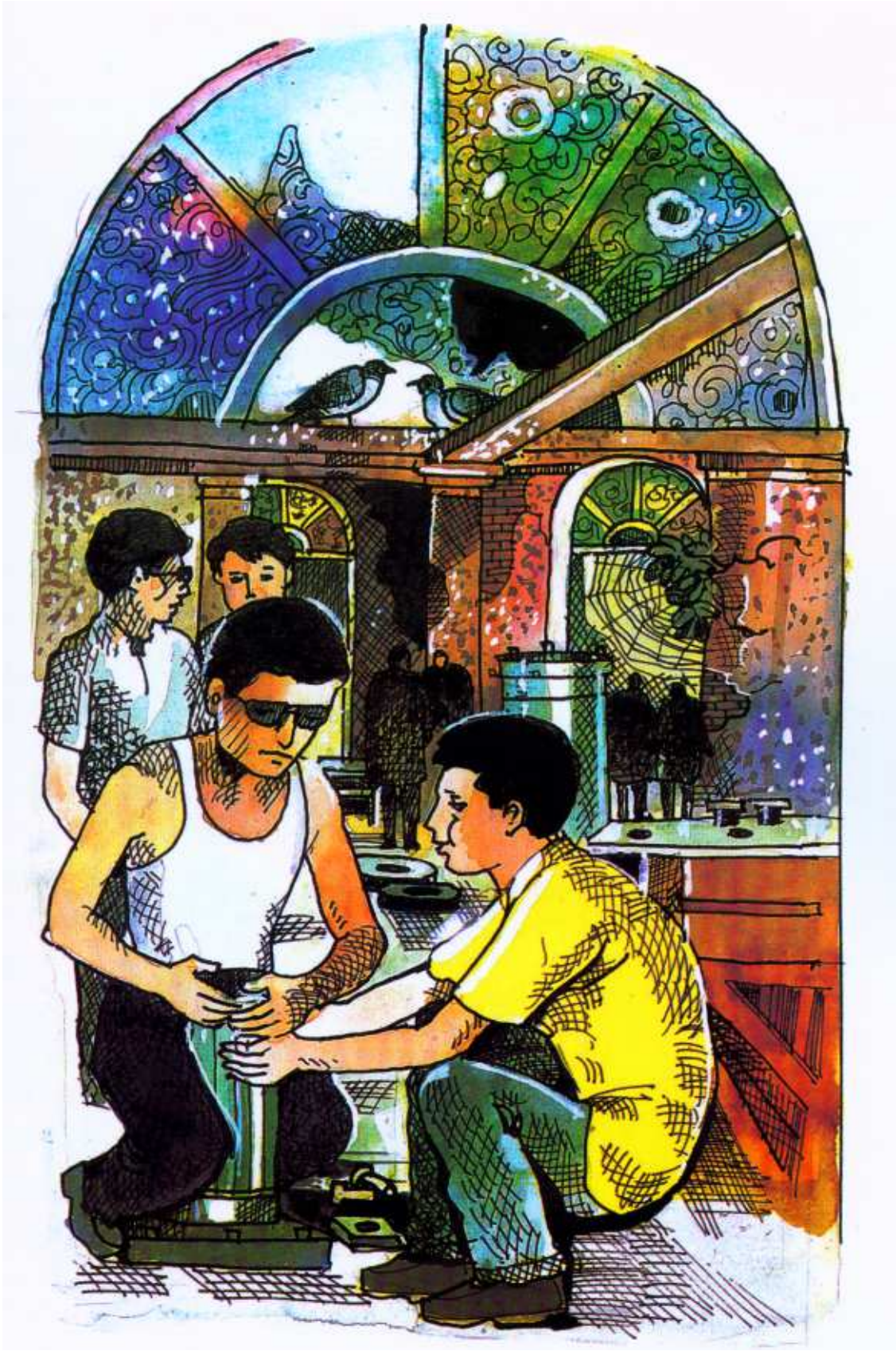

इस बारे में लोगों ने शिकायत की। उस पर साराभाई का तर्क था कि पंछियों को देखते हुए काम किया जाए तो विचारशीलता बढ़ती है। एक दिन वह हमारे सामने बैठे हैं, यह कबूतर के ध्यान में नहीं था। हमारी चर्चा के बीच ही कबूतर ने सामने के टेबल पर बीट कर दी और तब हमारे कार्यालय को छप्पर मिल गया। चर्च से लगभग एक किलो मीटर की दूरी पर समुद्र किनारे 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपित करने की सुविधा थी। इस सुविधा में प्रक्षेपण की दिशा और जमीन से होने वाला कोण बदलना संभव था। अरब सागर की दिशा में 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपित किया जाता था। एक ओर तुंबा का नाम विश्व के अंतरिक्ष के मानचित्र पर अधिकाधिक चमक रहा था, 'प्रक्षेपास्त्र' की प्रचंड गति से हमारा तादात्म्य बन रहा था, तो दूसरी ओर उस 'प्रक्षेपास्त्र' के लिए लगने वाले उपकरण कई बार हम साइकिल से ले जाते थे। 'प्रक्षेपास्त्र' युग और साइकिल युग का मिलाजुला सह अस्तित्व, यह नए भारत की पहचान बन रही थी।

7. हमारे जीवन सूत्र

उस समय तुंबा से प्रक्षेपित होने वाले 'प्रक्षेपास्त्र' विदेशी थे क्योंकि ऊंचाई के वातावरण का वेध लेने वाले 'प्रक्षेपास्त्र' अपने यहां अभी विकसित नहीं हुए थे। तुंबा का भविष्य विदेशी 'प्रक्षेपास्त्र' तक सीमित रहने वाला नहीं था। भारत की अपनी अत्याधुनिक 'प्रक्षेपास्त्र' विकसित करने की योजना थी।

तुंबा से लगी हुई 'वेली' नाम की एक पहाड़ी थी। इस पहाड़ी पर 'प्रक्षेपास्त्र' विकसित करने के लिए 'स्पेस साईंस एंड टेक्नॉलॉजी सेंटर' स्थापित करना था। इस अंतरिक्ष विज्ञान और तकनीकी ज्ञान केंद्र की छत के नीचे 'प्रक्षेपास्त्र' की प्रत्येक शाखा का अनुसंधान और संशोधन और लघु रूप में निर्मिति एक ही कक्ष में हो ऐसी कल्पना थी। तुंबा परियोजना के लिए आए हुए हम सब इस केंद्र का एक हिस्सा थे। दस हजार वैज्ञानिक, तकनीशियन आदि इस केंद्र में थे। एक दूसरे की प्रयोगशाला में जाकर वे शास्त्रीय और तकनीकी चुनौतियों पर प्रथमतः आदमी के रूप में और तब वैज्ञानिक के रूप में प्रयोग करें और राष्ट्रीय ध्येय से प्रेरित होकर देश की सेवा करें ऐसी डॉ. साराभाई की योजना थी। तो यह सब हुआ संयोजन। अब वास्तविक स्थिति क्या थी यानी जमीनी हकीकत? उदाहरण के तौर पर ईंधन प्रयोगशाला की घटना लें (चावल के एक दाने में पूरी हांडी का परीक्षण आप सहज कर पाएंगे।)

ईंधन बनाने का काम खतरे का था। सौ में से एक भी गलती हो जाए तो आग लगने और विस्फोट होने की आशंका होती है। ऐसे में चर्च में यह काम करने का सवाल ही नहीं था। फिर कहां करना? हां, एक जगह थी। जिस बिशप के घर का रूपांतरण नियंत्रण कक्ष के रूप में पहले प्रक्षेपण के समय हुआ था, उसी बिशप का एक दालान था। वह दालान बहुत टूटा-फूटा था। लेकिन गाय के लिए घास रखने की जगह थोड़ी सलामत थी। दस वर्ग मीटर के इस कमरे के चारों ओर घुटने के बराबर घास और झाड़ियां उग आई थीं, यह बात और है। अलावा इसके सांप और अन्य जीव जंतुओं की रेलपेल थी ही।

'वेली' की पहाड़ी पर ईंधन की प्रयोगशाला के निर्माण का काम जारी था। पर ईंधन में संशोधन जल्दी होना आवश्यक था और 'वेली' पर का निर्माण कार्य पूरा होने तक रुकने जैसा भी नहीं था। तब फिर क्या किया जाए? जवाब साफ था। दो दिन तक रात-दिन एक कर उस कमरे के चारों ओर का जंगल साफ किया गया, उस घास के कमरे की छापछूप करके मरम्मत की गई और फिर हमारी ईंधन प्रयोगशाला वहां शुरू हुई।

केरल की मूसलाधार बारिश शुरू होते ही यह प्रयोगशाला डगमगाने लगती, दीवारें गीली हो जाती, रेंगने वाले प्राणी अंदर आने लगते, खिड़की-दरवाजे फूल जाते। झंझावाती हवा अंदर घुसती और हमारा जी-जान से संभाला हुआ एक फलक पर चॉक से लिखा हुआ संदेश हवा के साथ ही बारिश के कारण धुल जाता। थोड़ा मौसम खुलना कि फिर हम उसी उत्साह से उसी फलक पर लिखते "टु स्ट्राइव टु सीक टु फाइंड एंड नॉट टु ईल्ड" "संघर्ष करो, जूझते रहो, कुछ तो हासिल करने का प्रयत्न करो, नित नए की तलाश करते रहो और अपने ध्येय का दामन न छोड़ो, आत्म समर्पण न करो, हार मत मानो।" इन शब्दों ने हमें बल दिया, जीवित रखा। 'प्रक्षेपास्त्र' के कुल भार के तकरीबन 80 प्रतिशत भार के घन-ईंधन के अत्यंत कठिन और रणनीति के अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र में हमारा देश विश्व में सबसे विकसित देशों की बराबरी पर है। लेकिन इस ईंधन क्षेत्र का प्रारंभ कुछ ऐसा था कि वह स्मृति आज भी मेरे और मुझ जैसे अनेक सहकर्मियों को रोमांचित करती है। एक मकड़ी के जाल बुनने के प्रयत्न में बार-बार गिरने और फिर उठने की भावना हमने भी अनुभव की। तुंबा ने ही हमें छोटे से बड़ा किया।

8. अलग परिवेश

हमारी ईंधन प्रयोगशाला की शुरुआत कहां और कैसे हुई यह अब आपने जान लिया होगा। दालान के पास की उस घास की कुटिया में हम काम चलाते थे और जल्दी वहां प्रयोगशाला बनाने की योजना करते थे। कुछ समय बाद वहां एक प्रयोगशाला बनाई भी गई। सादगी से लेकिन उत्साहपूर्वक उसका उद्घाटन हुआ। हमारी खुशी की कोई सीमा न रही थी। प्रयोगशाला का सारा साजो-सामान लगाकर हमने काम की शुरुआत की और तब हमें एक सुखद आश्चर्य हुआ कि इतने शौक से बनाई गई यह प्रयोगशाला पूरी होते-होते अपूर्ण लगने लगी, कम पड़ने लगी। ईंट सीमेंट से बनाए गए इस भवन के पूरा होने से पहले ही हमारे काम का विस्तार बढ़ चुका था।

तुंबा के अनुसंधान केंद्र में मनुष्य ही सबसे महत्वपूर्ण समझा जाता। अपनी प्रयोगशाला कैसी हो, उसमें और किन-किन चीजों की जरूरत है, इन सब बातों की पूछ-ताछ विदेशी तकनीशियनों से हो, यह बात भाभा/साराभाई को मंजूर नहीं थी। उनका यह आग्रह होता कि वहां प्रत्यक्ष काम करने वाले वैज्ञानिक ही तय करें कि उन्हें क्या चाहिए, किस सुविधा या उपकरण की आवश्यकता है। युवा या अनुभवी भारतीय वैज्ञानिक गलती करें तो भी कोई हर्ज नहीं लेकिन उनकी कल्पना के अनुसार ही उनकी प्रयोगशाला का निर्माण हो, ऐसा उनका आदेश होता था। तुंबा को विचार प्रयोग से प्रत्यक्ष प्रयोग की ओर दौड़ने की स्वतंत्रता थी। इसी कारण नई जरूरतों का अनुभव होता रहता था। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती थी। नई सुविधा, प्रयोगशाला या उपकरण निर्माण करने या लाने साराभाई ने कभी विरोध नहीं किया। लेकिन मांगा कि मिला, ऐसा आसान भी वह नहीं था। नई सुविधा किसे और क्यों चाहिए इस पर एक सामूहिक चर्चा होती थी। किसी एक सुविधा की जरूरत है ऐसा कहने वाले को अपना मत वैज्ञानिकों की सभा में मान्य करना पड़ता था। ऐसी सभा में बोलने वाले का ज्ञान, अध्ययन विषय की तांत्रिकता और चातुर्य की कसौटी होती थी। चर्चा का प्रत्येक श्रोता ऐसा बोलने वाले को तौलता था। कौन होशियार है, कौन अध्ययनशील है, किसको गहरा ज्ञान है, कौन उथला है, कौन सभा में तर्कशुद्ध बोल सकता है, किसकी क्या कमियां हैं,

किसकी शक्ति कहां अधिक है, ऐसी अनेक बातों के संदर्भ में सहकर्मी एक दूसरे से चर्चा कर समाधान करते। युवा नए इंजीनियर अपने वरिष्ठ सहकर्मियों की गुणवत्ता जांच परखकर तय करते थे। उसके कार्य को देखा जाता था। आदमी के नाम के आगे उसके पद की प्रतिष्ठा से बहुत पहले उसके सहकर्मियों द्वारा ही वह उसे प्रदान कर दिया जाता था।

तुंबा में अब हर दिन कम से कम एक दो नए चेहरे आते थे। नए युवा चेहरे भारतीय इंजीनियरिंग कॉलेज से उत्तीर्ण लोग, अपने ही शिक्षा संस्थान से पास आउट हुए, अपने साथ उत्साह और जिद लेकर आए हुए। डॉ. होमी भाभा और विक्रम साराभाई का युवा पीढ़ी पर गजब का भरोसा था। उनके लिए काम का ऐसा वातावरण बनाने का उनका मानस था कि जिससे सामान्य वैज्ञानिक भी असाधारण दर्जे का काम करेगा। तुंबा का माहौल धीरे-धीरे उनके इस मानस की परिपूर्णता की ओर बढ़ रहा था।

संक्षेप में, उपलब्ध संसाधनों और इच्छाशक्ति से अंतरिक्ष विज्ञान और तकनीकी ज्ञान केंद्र को ठोस संगठनात्मक स्वरूप देने का समय अब आ गया था। एक दिन अपने संगठन के उद्देश्य और कार्य पद्धति पर चर्चा करने के लिए हम तीन-चार लोगों को डॉ. साराभाई ने अहमदाबाद बुलाया।

9. स्वयंपूर्णता की ओर

अहमदाबाद में शनिवार और रविवार को हमने 'अंतरिक्ष विज्ञान तकनीकी ज्ञान केंद्र' का संघटनात्मक मसौदा तैयार किया। डॉ. साराभाई हमारे साथ थे। उनके साथ के ये दो दिन एक बौद्धिक और अमूल्य अनुभूति का नजराना ही थे। किसी भी क्षेत्र में मूलभूत संशोधन उसके व्यावसायिक उपयोग तक एक अखंड शृंखला से जोड़ने की क्षमता संगठन में लाने का हमने प्रयास किया। विज्ञान के सभी सामाजिक क्रिया कलापों और कामों से संपूर्णतः एकरूप होने की आवश्यकता थी। इसीलिए फिर एक बार आदमी महत्वपूर्ण था। अंतरिक्ष विज्ञान और तकनीकी ज्ञान केंद्र में वैज्ञानिक ही केंद्र बिंदु हो, ऐसा आग्रह था। उनकी आकांक्षा और विकास की कल्पना की अनुभूति निरंतर जागृत रखने का प्रयत्न संगठन की कार्यपद्धति में था। बहुत से अंशों में वह सफल भी हुआ।

सच कहें तो लोकनिर्माण विभाग जितना सरकारी होता है उतना ही सरकारी अणु-ऊर्जा विभाग था। लेकिन हमारा विभाग भारत सरकार का हिस्सा है, ऐसा हमें कभी लगा ही नहीं। अपना खुद का घर और गृहस्थी जिस आत्मीयता से हम चलाते हैं उसी आत्मीयता से हमने अंतरिक्ष केंद्र के बढ़ते विस्तार को देखा।

यह ऐसा कैसे हुआ? कारण बहुत गहरा है। वह एक दो वाक्यों में कहना संभव नहीं। एक बात तो जरूर हुई। अणु-ऊर्जा और अंतरिक्ष अनुसंधान की वजह से भारत में एक नई संस्कृति जन्म ले रही थी, जिसके सूत्र प्रबंधन की कार्य पद्धति में थे। इस संदर्भ में बहुत कुछ लिखा हुआ नहीं था। लेकिन व्यवहार में लाने जैसा बहुत कुछ था। और उस आचरण का ज्वलंत उदाहरण यानी साराभाई जैसे व्यक्ति थे। यानी फिर संस्थान मनुष्य केंद्रित था और यह संस्थान का सामर्थ्य था।

अहमदाबाद की बैठक के बाद अंतरिक्ष विज्ञान और तकनीकी ज्ञान केंद्र में 'प्रक्षेपास्त्र' की प्रत्येक शाखा के लिए स्वतंत्र विभाग स्थापित किया गया। प्रत्येक विभाग में संबंधित विषय की प्रयोगशाला, छोटा-सा कारखाना और अन्य सुविधाएं निर्मित होनी थीं। सभी विभागों के सहयोग से अलग-अलग आकार के 'प्रक्षेपास्त्र' विकसित करना मुख्य उद्देश्य था। इन प्रक्षेपास्त्रों की शृंखला को

रोहिणी नाम दिया गया था। हममें से कुछ लोगों को विभाग प्रमुख बनाया गया और विभाग प्रमुख होने के नाते रोहिणी परियोजना की जिम्मेदारी सौंपी गई।

पहला प्रयोग पचहत्तर मि.मी. व्यास के 'प्रक्षेपास्त्र' का था। इसीलिए उसका नाम रोहिणी 75। आरंभ में आरबनकाडू के गोलाबारूद कारखाने में पारंपरिक विधि से तैयार किया गया कम ऊर्जा का ईंधन इस्तेमाल हो ऐसा तय हुआ। उद्देश्य यही कि 'प्रक्षेपास्त्र' के अलग-अलग भाग, उसके इस्तेमाल में आने वाले पदार्थ, उसका वायुगतिक गुण, प्रक्षेपण मार्ग आदि बातों के अध्ययन की शुरुआत हो। तदनुसार नवंबर 1967 में रोहिणी 75 का पहला सफल परीक्षण किया गया।

तुंबा से पहले अमेरिकन बनावट का पहला 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपित करने के चार साल बाद घटित यह महत्वपूर्ण घटना थी। भारतीय 'प्रक्षेपास्त्र' विकसित करने की दृष्टि से घटित यह पहला सोपान था।

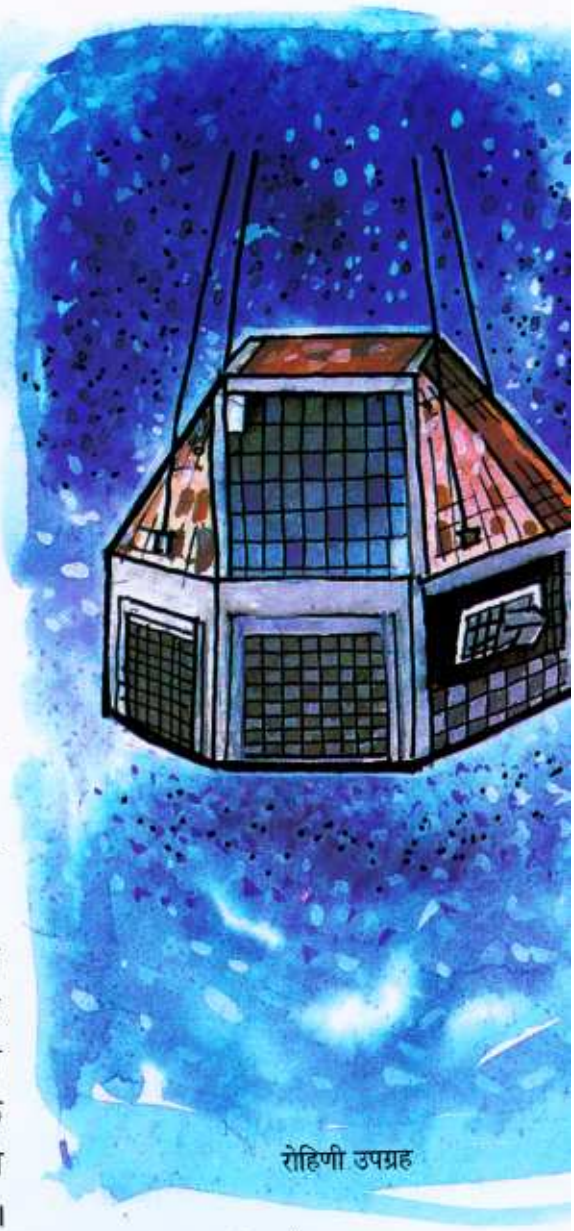
रोहिणी उपग्रह

अब ईंधन की शक्ति बढ़ाने का काम जरूरी था क्योंकि अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए ज्यादा शक्ति के ईंधन की आवश्यकता थी। 'प्रक्षेपास्त्र' का अस्सी प्रतिशत वजन उसके ईंधन में होता है। उसके प्रत्येक कण में अब उससे अधिक शक्ति ठूंस-ठूंसकर भरने की आवश्यकता थी। यह काम सरल तो था ही नहीं। इतनी कम सुविधाओं के साथ नियंत्रण और मार्गदर्शन का काम करना अपरिहार्य था।

इन सब कामों को रोहिणी 75 के प्रक्षेपण ने गजब की चेतना दी। तुंबा वेली भवन पर कार्य की शुरुआत हो चुकी थी, 'प्रक्षेपास्त्र' के सफल परीक्षण का यह मुख्य संदेश था।

10. नए भारत का उदय

तुंबा के इतिहास का एक महत्वपूर्ण दिन दो फरवरी 1968। इस दिन आस्ट्रिया, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, जापान, ब्रिटेन, अमेरिका और सोवियत संघ देशों के प्रशासक और वैज्ञानिक तुंबा में जमा हुए थे। संयुक्त राष्ट्र के प्रतिनिधि भी थे। भारत की ओर से प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी स्वयं उपस्थित थीं।

उल्लेखनीय है कि सन् 1962 में संयुक्त राष्ट्र की एक समिति ने विषुववृत्तीय 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपण केंद्र की स्थापना करने की सिफारिश की थी। जनवरी 1964 में अर्जेंटीना, ब्राजील, जापान, स्वीडन, अमेरिका एवं सोवियत संघ के प्रतिनिधित्व में संयुक्त राष्ट्र संघ का एक शिष्ट मंडल तुंबा आया था और संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से जो अंतर्राष्ट्रीय प्रक्षेपण केंद्र स्थापित होना है, वह तुंबा में हो ऐसी सिफारिश की थी।

दो फरवरी 1968 के दिन तुंबा इक्वेटोरियल रॉकेट लांचिंग स्टेशन (टी ई आर एल एस) भारत के प्रधानमंत्री ने 'संयुक्त राष्ट्र' को सौंपा। प्रसंग औपचारिक लेकिन स्वर्ण अक्षरों में लिखने जैसा

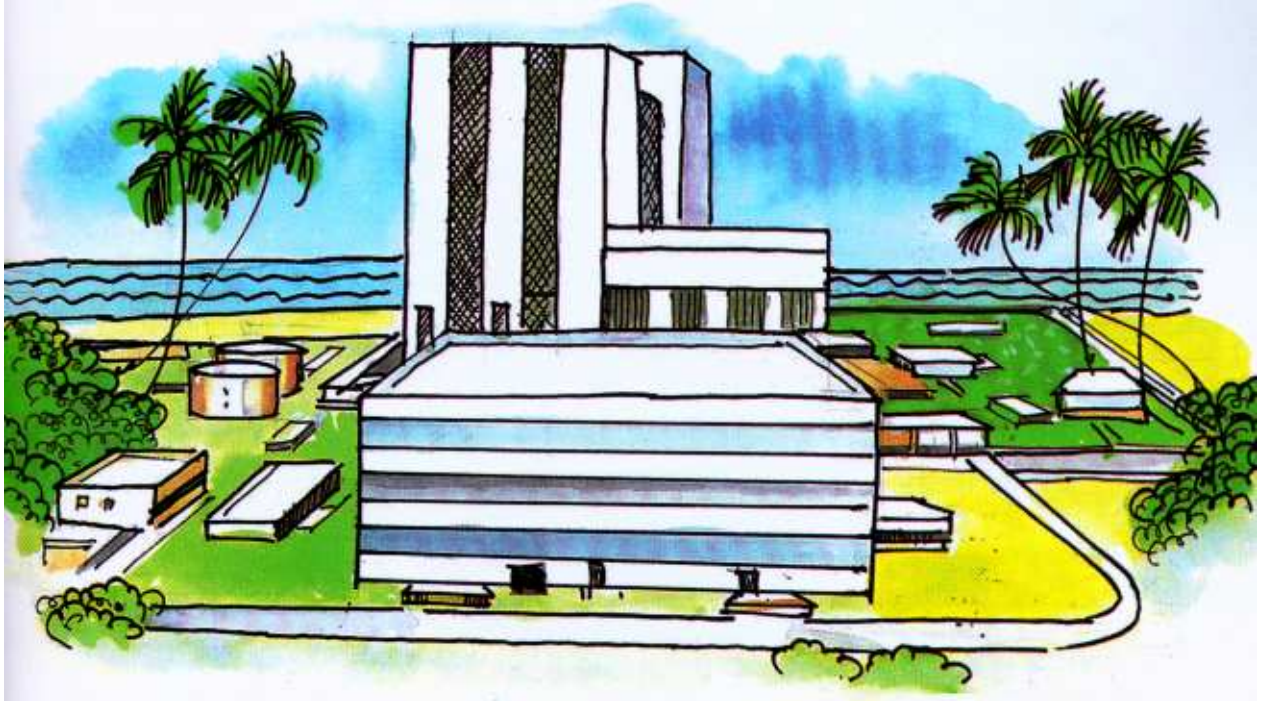

वायुमंडल का वैज्ञानिक अध्ययन एक दूसरे के सहयोग से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आरंभ करने की एक योजना की पूर्णता का समाधान दो फरवरी की इस घटना में है। बिशप के घर का नियंत्रण केंद्र के रूप में रूपांतरण अब सहज ही लुप्त हो गया था। उसके स्थान पर पास ही समुद्र के किनारे एक सुंदर भवन में नया नियंत्रण केंद्र आरंभ हुआ था। 'प्रक्षेपास्त्र' और उस पर के 'पे लोड' को एकत्रित करने वाला केंद्र, 'प्रक्षेपास्त्र' पर नजर रखने वाला रडार, 'प्रक्षेपास्त्र' के ध्वनि प्रेक्षक यंत्रों के सिग्नल, जमीन पर अभिग्रहित करने वाले केंद्र, कंप्यूटर और यातायात का नेटवर्क आदि सब सुविधाएं अब वैज्ञानिकों के उपयोग के लिए उपलब्ध थीं

दो फरवरी के 'अर्पण कार्यक्रम' में डॉ. साराभाई ने अप्रतिम भाषण दिया। वैसे वे हमेशा अच्छा बोलते थे। मंच पर उनके शब्द हमेशा की बोलचाल जितने ही भावपूर्ण होते, "चार बरस पहले इस तुंबा की रेत पर मैं जिनके साथ टहला हूं, उनके भव्य दिव्य स्वप्न में ही आज का तुंबा साकार हो रहा है। उन होमी भाभा का मुझे आज तीव्रता से स्मरण हो रहा है। ऐसी शुरुआत करके विकासशील देशों के संदर्भ में उच्च तकनीकी ज्ञान का महत्व उन्होंने प्रतिपादित किया।"

शाम का समय था। समुद्र शांत था, लेकिन लहरों की मंद खलखल शुरू थी। किनारे का नारियल वन हवा से खरखरा रहा था और देश-विदेश से आए हुए ख्यातनाम लोग भारत के प्रधानमंत्री के साथ विक्रम साराभाई के धीर-गंभीर बोल सुन रहे थे, "तुंबा के समुद्र किनारे प्रकृति से खुले मन के साथ सामीप्य स्थापित करने वाला यह छोटा बच्चा और अत्याधुनिक तकनीकी ज्ञान के आविर्भाव का प्रत्यक्ष उदाहरण यह 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपण केंद्र, यह इस नए भारत का रूपकात्मक स्वरूप है। प्रचंड गति के 'प्रक्षेपास्त्र' का सिंहावलोकन करने वाले आधुनिक रडार्स और 'प्रक्षेपास्त्र' और 'प्रक्षेपास्त्र' का 'नोज़कोन' साइकिल पर ले जाने वाले वैज्ञानिक और तकनीशियन—इस विरोधाभास में नया भारत धीरे से झांकता नजर आता है।...

"आज अणु से निर्मित होने वाली शक्ति विद्युत परमाणु विज्ञान की तीव्र वृद्धि और बाहरी अंतरिक्ष से संपर्क साधने की मानवीय क्षमता, इन सब के बीच एक नया विश्व जन्म ले रहा है। इन विश्व बनाने वाले साधनों से इस देश का परिचय प्रगाढ़ होता रहना चाहिए, क्योंकि इन साधनों का इस्तेमाल ही हमारे अपनों की और समाज की समस्याओं के निदान का गुरुमंत्र है।"...

फरवरी 1968 में साराभाई जब यह बोले उस समय एकाध अपवाद को छोड़कर विदेशों से ही 'प्रक्षेपास्त्र' आते थे। लेकिन नए साधनों से नया परिचय होता था। चीजें बदलना शुरू हुई थीं। 'प्रक्षेपास्त्र' के 'पे लोड' नारियल के पेड़ों तले तैयार करने के दिन कब के इतिहास हो चुके थे।

11. अस्त्र अपना, ईंधन भी अपना ही

प्रधानमंत्री के करकमलों से तुंबा प्रक्षेपण केंद्र संयुक्त राष्ट्र को सौंपे एक साल बीत गया। इस कालावधि में बहुत कुछ घटित हुआ था, हममें से बहुत लोग तुंबा के नजदीक 'वेली' पहाड़ी पर गए थे। अनेक विभाग कार्यान्वित थे, पूर्ण हुई प्रयोगशालाओं के उद्घाटन के पूजा नारियल फूट रहे थे और नए निर्माण कार्य के भी।

प्रापलेंट इंजीनियरिंग विभाग, गाय के गोठे के पास की चारे की गोठ छोड़ कर 'वेली' पर कब का पहुंच गया था और पहुंचते ही नया भवन बनाया जा रहा था। उसके निर्माण कार्य और प्रयोग के नक्शे भी हमने शिल्पकारों के लिए बना दिए थे। भाभा, साराभाई के बताए अनुसार वैज्ञानिकों के आस-पास उनकी कल्पनानुसार ही प्रयोगशाला साकार होने लगी थी।

ईंधन पर का यानी प्रापलेंट पर का काम जोखिम भरा था। विस्फोटक पदार्थ से हमेशा संबंध होने के कारण आग और विस्फोट की कभी भी आशंका थी। इस कारण ईंधन की सभी अनुसंधान

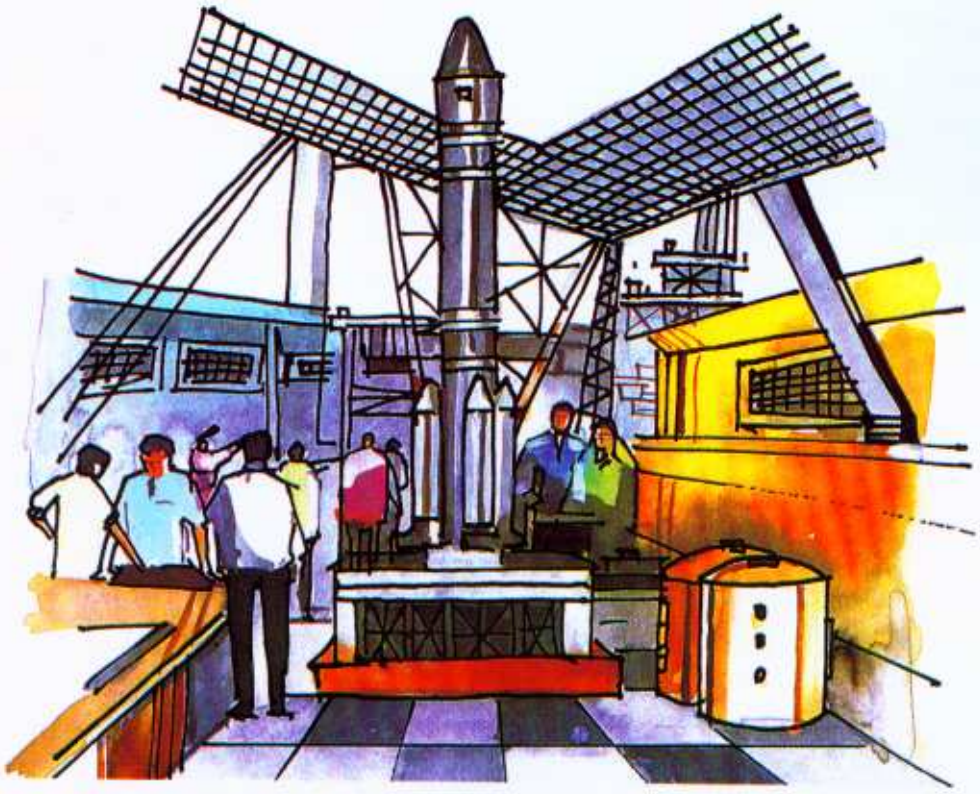

प्रयोगशालाएं वेली पर अलग इमारतों से अलग स्थान पर बनाई गई थीं। वहां प्रवेश करने के लिए अलग गेट थे। चौबीस घंटे एक चौकीदार भी होता था। अंदर जाने से पहले धूम्रपान की सारी सामग्री (बीड़ी, सिगरेट वगैरह) निकाल देनी होती थी। हर कोई इस नियम का पालन करता ही था। अंदर काम करने वाले लोग गेट के बाहर आकर धूम्रपान करते थे।

एक बार इस गेट से ईंधन विभाग में प्रवेश करते ही एक स्वप्न नगरी शुरू होती थी। घाट उतरने जैसे घुमावदार रास्ते, ऊपर से आने वाला रास्ता सौ मीटर नीचे तक आता था। यदि विस्फोट हो जाए तो धक्कों के कंपन को रोकने के लिए असंख्य पेड़ लगाए गए थे। इस विस्फोट का धमाका कम करने के लिए भवन के आस-पास मिट्टी की ऊंची मेड़ें बनाई गई थीं। उन पर हरी भरी घास होती। मूलतः प्रकृति का केरल को वरदान ही था। वह प्राकृतिक सौंदर्य ईंधन विभाग के परिसर में कुछ अधिक महसूस होता था। खासकर सपाट ऊंचाई, घनी झाड़ी, साफ सुंदर घुमावदार रास्ते, हरी भरी घास, छोटी रमणीय इमारतें और पार्श्वभूमि में दिखने वाले विस्तीर्ण सरोवर। इन सबके कारण ईंधन विभाग किसी सुरम्य, हवादार, पहाड़ी सा सुंदर दिखता था। साराभाई मजाक में उसे 'गोवारीकर नगर' कहते थे।

परिसर मनमोहक लेकिन सब कुछ अभी नया था। ईंधन का काम ही नया था, इस कारण अनुभवी लोग लगभग नहीं ही थे। जो थे, प्रत्यक्ष प्रयोगों के माध्यम से ही अनुभव ले रहे थे। सभी बातें सावधानीपूर्वक करनी होती थीं। काम में अपेक्षित सुरक्षा और सतर्कता बरती जा रही है या नहीं इस संभ्रम में हम हमेशा होते। घर में टेलीफोन बजा नहीं कि किसी दुर्घटना की आशंका से मन कसमसाने लगता था।

काम के तमाम तनावों के बीच भी कई चुनौतियां थीं। तुंबा के 'प्रक्षेपास्त्र' वेली के ईंधन के बिना अपूर्ण था। अंतरिक्ष युग अत्याधुनिक ईंधन के बिना साकार नहीं हो सकता था। ऐसे ईंधन का वजन 80 प्रतिशत होने के कारण 'अंतरिक्ष' स्तर के ईंधन बिना 'प्रक्षेपास्त्र' 20 प्रतिशत ही सिद्ध हो पाता था।

किसी ने कोई जल्दबाजी नहीं की क्योंकि ईंधन के काम की कठिनाई सबको मालूम थी। हड़बड़ करने पर होने वाला खतरा भी सभी समझते थे। पर हम लोगों को जिम्मेदारी का अहसास अंदर ही अंदर सचेत करता था। एक ओर सब कुछ सतर्कता से सावधानीपूर्वक हो यह चिंता, तो दूसरी ओर 'प्रक्षेपास्त्र' स्थानीय बनावट 20 प्रतिशत से आगे ले जाने की जबर्दस्त जरूरत। अंतरिक्ष स्तर का ईंधन 'प्रक्षेपास्त्र' की छलांग 20 प्रतिशत से एकदम 100 प्रतिशत तक ले जाने वाला था।

21 फरवरी 1969 का दिन का प्रभात, फिर आगे 1994 में इस घटना का रौप्य महोत्सव संपन्न हुआ। 21 तारीख को सुबह 8 बजकर 5 मिनट पर प्रापलेंट इंजीनियरिंग विभाग द्वारा विकसित

'प्रक्षेपास्त्र' स्तर के ईंधन पर एक छोटे 'प्रक्षेपास्त्र' ने आकाश में रोमांचकारी उड़ान भरी। 100 प्रतिशत तुंबा वेली द्वारा विकसित किया गया पहला 'प्रक्षेपास्त्र'। पूरे देश में उसकी भूरि-भूरि प्रंशसा हुई। पत्रों तारों की मानो बरसात हुई। सही मायने में अंतरिक्ष की ओर पहला कदम यह मत साराभाई ने अपने अभिनंदन संदेश में व्यक्त किया।

'प्रक्षेपास्त्र' वैसे छोटा था। पचहत्तर मि.मी. व्यास का, लेकिन उसकी आकारवृद्धि यह एक चक्राकार प्रक्रिया होनी थी। एक बार वह शुरू हुई कि रुकने का उसे नाम नहीं था। आज कितनी छोटी शुरुआत है इसका महत्व नहीं, वह शुरुआत हो यह महत्वपूर्ण था। उसका आकार और वजन हजार गुना बढ़ाना था और उसे बढ़ाने की हिम्मत लोगों में थी। वैज्ञानिक तकनीशियनों के आसपास तैयार की गई इस संस्था की बाहें पर्वत जैसी चुनौती को स्वीकारने के लिए फड़फड़ा रही थीं। 21 फरवरी, 1969 के 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपण से हम सभी एकदम विद्युतमय हो गए थे।

12. आरंभ छोटा लेकिन

तुंबा वेली बनावट के 21 फरवरी, 1969 के दिन हुए 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपण से हम सभी अभिभूत थे। इतने कि हमारा मन एकदम 10,000 कि.ग्रा. वजन के ईंधन के आस-पास मंडराने लगा।

लेकिन प्रत्यक्षतः हमारा ईंधन 10 कि.ग्रा. से भी कम था। लेकिन वह 'अंतरिक्ष' स्तर का था। यह बात महत्वपूर्ण थी। इस ईंधन के दस टन में छोटे से उपग्रह को अंतरिक्ष में पहुंचाने की सामर्थ्य थी। अगर वैसा स्तर न हो तो 10 टन का ईंधन यह नहीं कर सकता था। अंतरिक्ष स्तर का ईंधन होना और न होना इस बीच का फर्क समझना इतना सरल जैसे उपग्रह का अंतरिक्ष में जाना अथवा धरती पर ही भरभरा के गिर जाना।

यानी अब ईंधन का आकार बढ़ाने के काम में लगना जरूरी था। अब तक हमने भौतिक, रसायन, गणित, विज्ञान विषयों का मुख्यतया आधार लिया था। अब आगे ईंधन का आकार 1000 गुना बढ़ाने के लिए अभियांत्रिकी की ओर ध्यान देना जरूरी था। अर्थात् विज्ञान, अभियांत्रिकी ज्ञान, तकनीकी ज्ञान ऐसी एक अखंड शृंखला एक विशिष्ट उद्देश्य से विकसित करना जरूरी था। उद्देश्य स्पष्ट था, 'अंतरिक्ष स्तर का ईंधन मिश्रण बनाना'। यह पहला पायदान था। उसके तुरंत बाद का अगला पायदान यानी इसी मिश्रण से अत्यंत वृहद व्यास और लंबाई के ईंधन को तैयार करना। इसके लिए एक विशाल कारखाना आवश्यक था। ऐसे कारखाने के लिए आवश्यक चीजें देश में कहीं भी उपलब्ध नहीं थीं।

कितना बड़ा हुआ होता यह कारखाना, तुलनात्मक उत्तर ऐसा है। देखिए। 'प्रक्षेपास्त्र' के प्रत्येक भाग पर अनुसंधान, उसका विकास, उसके हर हिस्से को जोड़ना और प्रक्षेपण। यह सब का सब करने के लिए तुंबा वेली का विस्तार था मात्र 400 हेक्टेअर से भी कम जमीन पर। लेकिन उपग्रह अंतरिक्ष की कक्षा में पहुंचाने के लिए लगने वाले सिर्फ ईंधन कारखाने के लिए ही दो हजार हेक्टेअर जगह की जरूरत थी।

यह सब कौन करता? अंतरिक्ष विज्ञान और तकनीकी केंद्र के उद्देश्यों में इसका उत्तर समाहित था। किसी भी क्षेत्र को मूलभूत अनुसंधान उसके अंतिम उपयोग तक एक अखंड शृंखला में जोड़ना

यही नए संस्थान का ध्येय था। इसके लिए विज्ञान, तकनीकी ज्ञान और अभियांत्रिकी की शृंखला अभिप्रेत थी। उसके लिए वैज्ञानिकों को एक से अधिक जिम्मेदारियां संभालना आवश्यक था। तब ईंधन के उत्पादन के लिए वृहद कारखाना बनाने की जिम्मेदारी की टोपी ईंधन पर संशोधन अनुसंधान करने वालों को ही पहनना जरूरी था।

विश्वविद्यालय या अन्य अनुसंधान केंद्र के काम और डॉ. साराभाई के सान्निध्य में किए गए कार्य में यही अंतर था। विश्वविद्यालय में अनुसंधान कर रहे प्राध्यापक को आप दो हजार हेक्टेअर पर कारखाना खड़ा कीजिए ऐसा कोई नहीं कहता? लेकिन साराभाई की कार्य पद्धति में यह संभव था। अर्थ स्पष्ट था, मात्र ईंधन ही अंतरिक्ष दर्जे का होना पर्याप्त नहीं था। अंतिम उपयोग यदि दस टन में हो तब दस कि.मी. के ईंधन से हजार गुना छलांग लगानी चाहिए।

एक दिन साराभाई का बुलावा आया। उसके अनुसार मैं सुबह जल्दी अहमदाबाद पहुंचा। स्नानादि करके वे प्रसन्न मुद्रा में तैयार थे। उनकी छोटी सी स्टैंडर्ड हेरॉल्ड गाड़ी थी। उसे वे खुद चलाते थे। "बहुत गहन विचार मस्तिष्क में चल रहा हो, तो गाड़ी खुद ही चलानी चाहिए। रास्ते पर लक्ष्य केंद्रित करते-करते जड़ विचार पीले पत्ते की तरह झर जाते हैं।" वे हंसकर बोले,

"लेकिन कौन-सा गहन विचार चल रहा है?" मैंने पूछा।

"रोहिणी उपग्रह पृथ्वी के पास के कक्ष में पहुंचाने वाले 'एस एल वी अग्नि सैटेलाइट लांच वेहिकल' 'प्रक्षेपास्त्र' का एक डिजाईन तैयार है", वे बोले, "वाहन चार स्तरों का है, उसके पहले स्तर में दस टन प्रापलेंट (ईंधन) होगा। अपना वेली प्रापलेंट उसमें डाला जा सकता है क्या?"

श्री हरिकोटा

13. महान स्वप्न

हेरॉल्ड चलाते वक्त डॉ. साराभाई द्वारा पूछे गए प्रश्न से कोई भी चकरा जाता। कारण अस्पष्ट हो, तो स्पष्ट करता हूं। उपग्रह अंतरिक्ष में छोड़ने के लिए साराभाई चार स्तर के 'प्रक्षेपास्त्र' के संदर्भ में बोले थे। उसका पहला स्तर की मोर्टार 1 मी. व्यास का था। ईंधन का वजन दस टन के आस-पास था। बाकी के तीन रॉकेट मोर्टार छोटे-छोटे हो रहे थे। चौथे स्तर का मोर्टार सबसे छोटा था लेकिन उसमें भी 300 कि.ग्रा. से अधिक इ ंधन था। इस सबसे छोटे मोर्टार के तीसवें अंश का मोर्टार कितना होगा? मजाक में कहना हो तो खिलौने जैसा। ऐसे छोटे रॉकेट मोर्टार पर वेली में हमारा काम चल रहा था। उससे भी थोड़े और छोटे मोर्टार पर बिल्कुल नहीं चल रहा था, ऐसा नहीं लेकिन अक्सर जमीनी परीक्षण के वक्त किसी बम की तरह उनमें विस्फोट होता था।

लेकिन हमारा स्वप्न तो एक मीटर व्यास के रॉकेट मोर्टार का था। हममें से कुछ लोग गंभीरता से इस तरह के मोर्टार के निर्माण के विकास का सिलसिलेवार विचार करते थे। कोई उन्हें वर्तमान स्थिति से पलायनवादी कह सकता था। लेकिन ऐसा था नहीं, इस दूरस्थ भविष्य के विचार से वर्तमान में स्थित समस्या पर हमारी जानकारी बढ़ रही थी। तत्काल समस्याएं हल नहीं हो रही थीं, लेकिन उनका निदान हो सकेगा ऐसा आत्मविश्वास इस विचार प्रयोग से जन्म ले रहा था।

विक्रम साराभाई

ऐसा था, तब भी गाड़ी चलाते वक्त साराभाई द्वारा पूछा सवाल कठिन था। हमारा वेली प्रापलेंट एस एल वी वाटन के प्रारंभिक चरण में डालना संभव होगा क्या? यह उनका प्रश्न था।

मैं तुरंत कुछ नहीं बोला, तुंबा में हमारे हाथों आकार ले रहा स्फोट और उसके साथ का ब्रह्मांड मेरी आंखों के सामने किसी दृश्य की भांति झटपट गुजर गया। उत्तर स्पष्ट था, कार्य में चुनौती थी और उसे टाला नहीं जा सकता था। "ऐसे रॉकेट मोर्टार बनाने के लिए आवश्यक प्लांट हेतु लगभग दो हजार हेक्टेअर जमीन की जरूरत होगी," मैंने कहा। पहले चरण का रॉकेट मोर्टार जमीनी परीक्षण के लिए प्रज्वलित होगा तब उसमें से निकलने वाली ज्योति लगभग पचास मीटर लंबी होगी। ऐसा मोर्टार लगभग 60 टन की सनसनाती शक्ति देगा। ब्रह्मांड को 40 सेकंड तक कंपायमान रखने की इस मोर्टार में क्षमता होगी।"

बहुत देर तक डॉ. साराभाई कुछ बोले नहीं। सड़क पर ध्यान रखकर जब हम गाड़ी चलाते हैं, तब मस्तिष्क के गहन विचार झर जाते हैं ऐसा वे कहते थे। कोई गहन विचार उनके मस्तिष्क में चल रहा होगा। थोड़ी देर बाद उस गहनता से वे बाहर निकलते से लगे। फिर जैसे खुद से बतियाते हुए बोले, "अंतरिक्ष दर्जे का ईंधन बनाने का देश का अपना कारखाना होना चाहिए।"

"हमें वह अन्य देशों से मिल भी सकता है, लेकिन शर्मनाक शर्तों के साथ वह हमें मंजूर न होगा। कारखाना हमें ही बनाना चाहिए, उसके लिए जो आवश्यक है, मुझे बताइए।"

प्रश्न है, देश की अस्मिता का "...शर्मनाक शर्तें जो हमें मंजूर न होंगी...देश की अस्मिता का प्रश्न है" ये शब्द मस्तिष्क में लगातार गूंज रहे थे।

14. रोमांचकारी उत्तरदायित्व

'प्रश्न देश की अस्मिता का है', जब डॉ. साराभाई ने यह कहा तब अनेक कोनों से कार्य शृंखला की आवश्यकता मुझे अनुभव हुई। 2000 हेक्टेअर जमीन पर व्यूह रचनात्मक स्वरूप का ईंधन कारखाना बनाना, यह एक काम। इसी तरह महत्वपूर्ण, लेकिन बगैर आवश्यक आधार के अपूर्ण ईंधन तैयार करने के लिए लगने वाले सभी आवश्यक रसायन देश में उपलब्ध नहीं थे। उन्हें बनाना यह दूसरा कार्य। लेकिन अनुसंधान के बिना यह निर्मिति संभव नहीं थी। ऐसा अनुसंधान करना संभव हो इसके लिए प्रयोगशाला बनाना यह तीसरा कार्य।

जहां ऑक्सीजन नहीं हो, इतनी ऊंचाई पर जेट विमान नहीं चल सकता। पर 'प्रक्षेपास्त्र' कहीं भी जा सकता है क्योंकि ज्वलन के लिए प्राणवायु की पूर्ति करने वाला रसायन (ऑक्सीकारक रसायन) ईंधन का ही एक भाग होता है, जो ऑक्सीकारक यानी अमोनियम परक्लोरेट जैसा रसायन होता है। इसके अलावा अलग-अलग सम्मिश्रण (पॉलिमर) ईंधन के रूप में काम करते हैं।

ईंधन के ये दोनों घटक यानी ऑक्सीडिकारक और ईंधन अपने पास आवश्यक मात्रा में तो क्या बिल्कुल ही उपलब्ध नहीं थे। तब लगभग 50 अत्यंत महत्वपूर्ण रासायनिक पदार्थों पर पहला अनुसंधान और बाद में उनके उत्पादन का प्रबंध देश में करना आवश्यक था। यह क्षमता कार्यान्वित होने के बाद ही 2000 हेक्टेअर जमीन का प्रचंड ईंधन कारखाना स्वंय पूरा होता। बिना इन सबके यह संभव नहीं था।

यह स्वयंपूर्णता प्राप्त करने के लिए विज्ञान, तकनीक और अभियांत्रिकी इन तीनों की अटूट शृंखला का होना अनिवार्य था। इस शृंखला की आवश्यकता के अनुसार चार परियोजनाओं का हमने प्रस्ताव किया— पहला, पॉलिमर कॉम्प्लेक्स के लिए जहां सम्मिश्रणों (पॉलिमर्स) की प्रत्येक शाखा और घटक पर उच्च स्तर का अनुसंधान करना संभव हो, यह सम्मिश्रण ही प्रणोदक में ईंधन का काम करता है। दूसरा, परियोजना प्रस्ताव प्रणोदक ईंधन कारखाना स्थापित करना, जहां नए संशोधित सम्मिश्रण और महत्वपूर्ण रसायन भारी मात्रा में बनाना संभव हो। तीसरा अमोनियम परक्लोरेट या ऑक्सीकारक कारखाना और चौथा इन सबके अंतिम रूप यानी प्रत्येक दस टन वजन

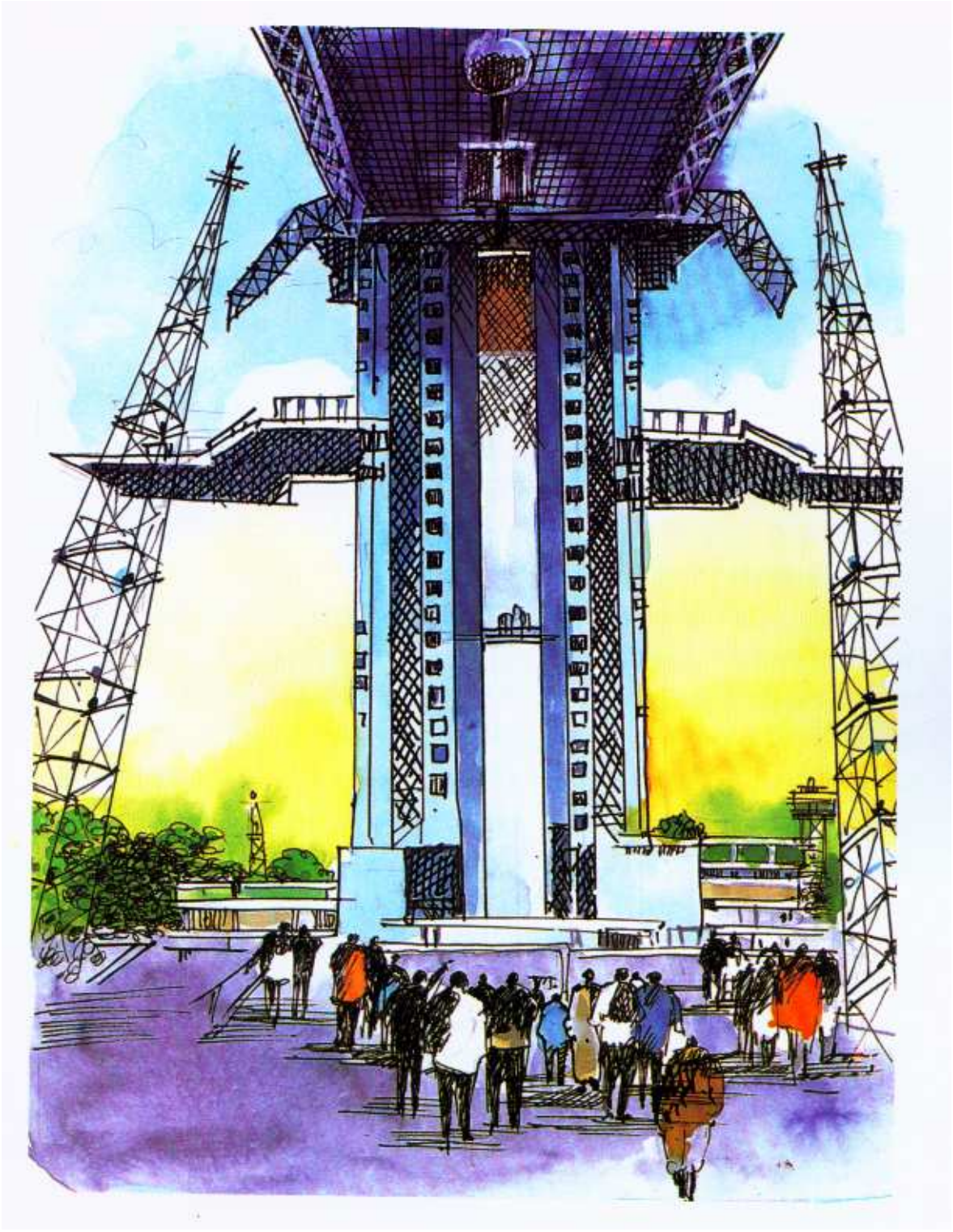

तक के प्रणोदक निर्मिति के प्लांट के लिए। उसे बानाने के लिए क्या-क्या आवश्यक है? इस संदर्भ में डॉ. साराभाई पूछ रहे थे।

प्रथम तीनों परियोजनाएं देश में उपलब्ध कौशल निपुणता और साधन सामग्री का इस्तेमाल कर पूरी होंगी, ऐसा हमारा विश्वास था। विचार और विवेचन इतना सिलसिलेवार और स्पष्ट था कि साराभाई की अध्यक्षता में संपन्न आयोग की एक ही बैठक में तीनों प्रस्ताव मंजूर हो गए। हमने काम की शुरुआत की लेकिन चौथी परियोजना के लिए होने के कारण एक रणनीति निर्धारित करना आवश्यक था। 2000 हेक्टेअर जमीन का विस्तार भी इस कारखाने के लिए अल्प था। 50 करोड़ रुपये की लागत से प्लांट निर्मित करने की इच्छा और तैयारी अन्य देशों ने व्यक्त की थी। इसमें से आधी रकम विदेशी मुद्रा थी। प्रथम चरण में दस टन वजन का प्रणोदक उनकी अनुमति से अपने यहां बनाने का अनुबंध करने को तैयार थे। इसका मतलब होता रासायनिक पदार्थों के लिए हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रम का बाहर के देशों पर निर्भर होना। विदेशियों को लगता था कि यह अनुबंध स्वीकार करने के अलावा भारत के पास कोई अन्य विकल्प नहीं। साराभाई की कार्यनिष्ठा का उन्हें अनुमान था लेकिन उनके नेतृत्व की उड़ान कितनी दूर तक है इसका अंदाजा उन बेचारों को नहीं था। आदमी की क्षमता का विश्वास उसे किस अपारंपरिक क्षमता तक ले जा सकता है यह सोच पाना बाहरी लोगों के लिए संभव नहीं था।

भारत सरकार की अणु ऊर्जा आयोग की बैठक से पहले डॉ. साराभाई ने मुझे बुला लिया। वह प्रसन्न थे, विचारों की गहनता नहीं थी। अपनी स्टैंडर्ड हेरॉल्ड खुद चलाने की आवश्यकता नहीं लग रही थी। एक निर्णय के साथ वे आए थे, क्या था वह निर्णय? श्रीहरिकोट्टा के तट पर दो हजार हेक्टेअर जगह मुझे देने का उन्होंने निश्चय किया था। उस स्थान पर सॉलिड प्रापलेंट, स्पेस बूस्टर प्लांट स्प्रॉब बनाने का उन्होंने आदेश दिया। हमारे 10-15 कि.ग्रा. वजन के रॉकेट मोर्टार का दनादन विस्फोट होते हुए भी दस हजार कि.ग्रा. वजन के प्रणोदक के स्पेस बूस्टर बनाने की जिम्मेदारी निमिषमात्र में हमें सौंप दी। कौन था, जो साराभाई के इस पर्वताकार विश्वास के प्रति दृढ़ और जागृत न होता?

15. एक ही जीवन सूत्र

हमारी चारों ही परियोजनाएं भारत सरकार ने मंजूर कर ली थीं। अनुसंधान के लिए पॉलिमर कॉम्प्लेक्स, उसमें अनुसंधानित महत्वपूर्ण रसायनों की निर्मिति के लिए प्रणोदक ईंधन कारखाना, ऑक्सीकारक निर्मिति के लिए अमोनियम परक्लोरेट कारखाना और दस टन वजन तक की प्रणोदक निर्मिति के लिए सॉलिड प्रापलेंट स्पेस बूस्टर प्लांट (स्प्राब) के अलावा प्रणोदक विषयक अनुसंधान के लिए वेली पहाड़ी पर स्थित प्रणोदक अभियांत्रिकी विभाग और छोटी मात्रा के प्रणोदक उत्पाद के लिए वेली पहाड़ी के खाली रॉकेट प्रापलेंट थे ही। श्री एम आर कुरूप के निर्देशन में सेंटर, इस दो स्तरीय 'प्रक्षेपास्त्र' के लिए लगने वाले प्रणोदक तैयार करने की क्षमता आर पी पी में कार्यान्वित हुई थी।

कालांतर में ये चारों परियोजनाएं पूरी हुईं। श्रीहरिकोट्टा में सॉलिड स्पेस बूस्टर प्लांट हमने सफतापूर्वक पूरा किया। कुल लागत केवल 8 करोड़ रुपये थी, इसमें विदेशी मुद्रा मात्र 80 लाख रुपये थी। सिर्फ और मात्र, कहने का कारण यह कि यदि विदेशी लोगों ने उसे बनाया होता, तो भारत का पचास करोड़ रुपये व्यय होता। उसमें से आधी विदेशी मुद्रा होती। घनप्रणोदक तैयार करने वाले विश्व के सबसे बड़े दस कारखानों में भारत का स्प्रॉब भी माना जाता है। वैयक्तिक प्रणोदक की भार मर्यादा 25 टन तक बढ़ाई गई। पी एस एल वी (पोलर सैटेलाइट लांच व्हीकल) के पहले चरण का प्रणोदक स्प्रॉब में बनाया जाता है।

यह रॉकेट मोर्टार विश्व का तीसरा बड़ा रॉकेट मोर्टार है। इसके लिए लगने वाला ऑक्सीकारक अमोनियम परक्लोरेट कारखाने से आता है। रसायन प्रणोदक कारखाने से आता है, प्रणोदक की अत्याधुनिक तकनीक प्रॉपलेट इंजीनियरिंग विभाग से संक्षेप में, विश्व में अपने बृहदाकार में तीसरे नंबर पर आने वाले प्रणोदक के रसायन, जैसे सभी लगने वाला कच्चा माल, लगभग सौ प्रतिशत अपने देश में अपनी खुद की तकनीक और अनुसंधान से हमने बनाए हैं। प्रणोदक के विषय में हमारा डिजाइन और रचना सब अर्थों में संपूर्ण है, किंतु परंतु का प्रश्न वहां नहीं है।

सन् 1967 में त्रिवेंद्रम के दिन आंखों में उतरने लगते हैं। तुंबा के परिसर में गाय के चारे की

दस वर्ग मीटर क्षेत्रफल की कोठरियां याद आती हैं। जैसे-तैसे बनाई गई उस प्रणोदक प्रयोगशाला का स्मरण हो आता है। हाल ही में उसे खाली कर हम वेली पहाड़ी पर पहुंचे थे, यह याद आता है। अभी सारा चित्र अस्पष्ट-सा ही है, सिर्फ उर्वरा कल्पना शक्ति और भव्य स्वप्न के बीच एक द्वंद्व है। यथार्थ में आंखों के आगे कुछ भी नहीं। किसी समारोह की आतिशबाजी में शोभायमान हमारे 10 कि.ग्रा. वजन के रॉकेट मोर्टार भी कानों के लिए कर्कश आवाज में विस्फोट करते हैं और ऐसे समय में राष्ट्र की अस्मिता का विचार कर इस देश का एक महान वैज्ञानिक उठ खड़ा होता है और दस हजार कि.ग्रा. वजन का प्रणोदक बनाने का कारखाना खड़ा करने की जिम्मेदारी दस पंद्रह कि.ग्रा. के प्रणोदक भी अभी ठीक से न बना सकने वाले हम जैसों के हाथों अटूट विश्वास से सौंप देते हैं। ... यह दो हजार हेक्टेअर जमीन आपकी है। खड़ा कीजिए वहां सपेस बूस्टर प्लांट, ऐसा पर्वत सा अटल विश्वास।

विक्रम साराभाई की इस आस्था और प्रेम की पूर्ति हम कैसे करेंगे। भारत सरकार की ओर से कितनी बड़ी जिम्मेदारी उन्होंने खुद के कंधों पर उठा ली थी? और किसलिए किया यह सब? किसलिए?

इसका उत्तर सरल था—श्रद्धा और विश्वास। साथ ही भूल करने की स्वतंत्रता अनुभव हो, ऐसे माहौल का भाभा, साराभाई को ध्यान था। जिस माहौल में साधारण वैज्ञानिक असाधारण स्तर का काम करें ऐसा उनका विश्वास था। ऐसे वातावरण की भाभा, साराभाई को आस थी। इस वातावरण की आस अकस्मात नहीं यह साराभाई ने फिर एक बार साबित किया था।

उनकी श्रद्धा और विश्वास को समुचित समर्थन देना हमारे हाथ में था। साधारण मनुष्य के हाथ में ऋण से उऋण होने का एक ही मार्ग था। यानी "हमारा अनुमान गलत था।" ऐसी विफल भावना उनके मन में कभी न आने देना। उनके विश्वास का पात्र होने के लिए आवश्यक हुआ तो आकाश पाताल एक करना। सौंपा हुआ काम पूरा करने के लिए कोई कसर बाकी न रखना, जो मनुष्य के लिए संभव है। सौंपा हुआ काम पूरा करने के लिए जो कुछ हमारे मनुष्य रूप में संभव था वह सब हमने किया, क्योंकि साराभाई का व्यक्त किया हुआ असाधारण विश्वास ही साधारण को असाधारण बना रहा था। उनके विश्वास के प्रति समर्थन ही हमारे बस में था। इसी ने हमें स्फूर्ति से भर रखा था। यही हमारा अपना जीवन सूत्र भी था।

टु स्ट्राइव, टु सीक, टु फाइंड एंड नॉट टु यील्ड, संघर्ष करो, जूझते रहो, नित नए की खोज करो, अपने उद्देश्य के प्रति दृढ़ रहो, आत्मसमर्पण मत करो, हार मत मानो क्योंकि विजय सिर्फ तुम्हारी है।

16. साथी हाथ बढ़ाना

इसरो की कहानी मनुष्यों की कहानी है। हमारे आप जैसे आदमी हजारों...। उनमें एडिसन कोई हो ऐसी अपेक्षा भी नहीं, लेकिन इस वातावरण में वे सभी लोग थे, जो एडिसन की नवकल्पना का प्रदर्शन कर सकते। हमारे देश में महान न समझे जाने वाले बहुत से लोग अमेरिका जैसे देश में जाकर बड़े हो गए। यह शायद वातावरण का परिणाम था। वैसा वातावरण यहां बनाना भाभा, साराभाई का सपना था। ऐसा माहौल जहां नियंत्रण की मनमानी न हो, अधिकारियों के आदेशों की दीर्घ परंपरा न हो। अनुभव, ज्ञान एवं वेतन में वरिष्ठ लोग अपने से छोटे और युवा उद्यमियों के साथ शास्त्रीय चर्चा और संवाद कर सकें। यह परस्पर संवाद मनुष्य से मनुष्य को जोड़गा और समान विचारधारा का एकत्रीकरण तथाकथित नियंत्रण के बिना ऐसे वातावरण को उत्साहित करेगा। ताजगी केवल एक नेता पर निर्भर नहीं होती बल्कि उसके आस-पास के अनेक लोग इस वातावरण को प्रदूषण मुक्त रखने का काम बगैर शोर-शराबे के कर रहे होते हैं। सामूहिक यश के वे भी छोटे-मोटे नायक होते हैं—स्तुति गीतों से न सराहे गए नायक।

ऐसे ही लोग साराभाई की सामर्थ्य शक्ति थे, वे असंख्य थे। केवल तुंबा वेली के काम करने वाले लोगों की संख्या भी बहुत बड़ी थी। ऐसे सीमित लोगों की पूरी सूची बनाना किसी एक आदमी के लिए बहुत कठिन काम है। यह सीमा होते हुए भी कुछ नामों का उल्लेख होना आवश्यक है।

इसरो का प्रशासनिक नियंत्रण अहमदाबाद की भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला यानी फिजिकल रिसर्च लेबॉरेटरी (पी आर एल) के पास था। वहां के गहन ज्ञान एवं अनुभव से संपन्न दो भीष्माचार्य साराभाई को बहुत मानते थे, और साराभाई उन्हें। प्रॉ. के. आर. रामनाथन और प्रॉ. पी. आर. पिशोरोटी। दोनों ने साराभाई के साथ कई वर्ष काम किया। अंतरिक्ष अनुसंधान समिति के सभासद सचिव प्रॉ. एकनाथ चिटणीस थे। इसरो के शासन प्रबंध को अफसरशाही से बचाने में उनका सक्रिय योगदान था।

इस काम में एक और महत्वपूर्ण व्यक्तित्व थे—श्री सुरेश ठाकुर। आपको यदि त्रिवेंद्रम में बात करनी हो, तो आपको बुलंद आवाज के कारण टेलीफोन की जरूरत नहीं, ऐसा मजाक उनकी आवाज के कारण हम किया करते।

संगणक विभाग के प्रमुख के रूप में फिजिकल रिसर्च लेबॉरेटरी (पी आर एल) के प्रशासकीय विभाग को भी लोगों की व्यक्तिगत दिक्कतों को समझकर वे सम्हाला करते। दूरदर्शन का आम जनता की शिक्षा के लिए उपयोग करने हेतु इसरों की साइट नामक एक अभिनव प्रयोग था। उसमें प्रॉ. एकनाथ चिटणीस के साथ श्री किरण कर्णिक नाम का एक युवा भी था। इन दोनों ने अपना तन-मन इस कार्यक्रम के लिए समर्पित कर उसे सफलता प्रदान की। इसके अलावा पी आर एल में बौद्धिक और मेल-जोल का माहौल बनाने एवं उसे कायम रखने में डॉ. प्रफुल्ल भावसार, डॉ. राजाराम भोसले, यु. आर. राव, डॉ. कुलकर्णी, डॉ. राघव राव, श्री प्रमोद कवि, डॉ. केशव मूर्ति, कर्नल एन. पंत, डॉ. कस्तूरी रंगन, श्री वाई. एस. राजन आदि का समावेश है। श्रीमती सुमन जोशी और प्रॉ. चिटणीस कार्यालयीय काम में इनकी मदद किया करते। तुंबा परियोजना में आरंभ से ही डॉ. साराभाई के साथ होने वालों में श्री एच. जी. एस. मूर्ति थे। इंजीनियर के रूप में उनके साथ काम करने वालों में श्री ए. पी. जे. अब्दुल कलाम और अणु ऊर्जा विभाग के ट्रेनिंग स्कूल से आए श्री आर. आखामुदन, डी. ईश्वरदास, एम. आर. कुरू ये तीन युवा थे। डॉ. साराभाई द्वारा अमेरिका से भारत लाए गए लोगों में डॉ. वाई. जनार्दन राव, डॉ. ए. ई. मुत्तुनायगम, डॉ. एम. के. मुखर्जी, डॉ. एस. सी. गुप्ता, डॉ. डी. एस. राणे, श्री एम. सी. माथुर जैसे विज्ञान क्षेत्र के अलग-अलग पारंगत और अनुभवी लोग थे।

डॉ. वी. पी. कुलकर्णी रूस से इलेक्ट्रॉनिक्स में डॉक्टरेट लेकर आए थे। वहीं श्री राघवेंद्र कणबुर अपने साथ इंग्लैंड का दीर्घ अनुभव लेकर यहां पहुंचे थे। अहमदाबाद के श्री प्रमोद काले इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग के प्रमुख थे, तो 'टर्लस्' में 'मिन्सक' के रशियन कंप्यूटर के पुणे के श्री दामले मुख्य थे। विश्व के सबसे बड़े दस कारखानों में से एक इस घनप्रणोदक कारखाने के मुख्य तांत्रिक अधिकारी थे नागपुर के श्री प्रकाश मजुमदार। सांगली के इंजिनियरिंग कॉलेज में अव्वल नंबर से उत्तीर्ण हुए और इसी गुणवत्ता के साथ बंगलोर के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस से एम ई पास श्री अनंत पत्की निमार्ण अभियांत्रिकी विभाग में थे। इसके अलावा सर्वश्री आंबेगांवकर, गुर्जर, पेंडसे, बेडेकर, पाटिल, क्षीरसागर, गायकवाड, हरदास, प्रकाश डोलस, माधव ढेकणे, अविनाश शिरोडे व उदय ताडे जैसे सैकड़ों युवाओं ने मिलकर तुंबा वेली में कार्य के वातावरण को अत्यंत सहज, अभिनव और उत्साहजनक बना रखा था।

डॉ. साराभाई खुद को अपने लोगों का यश मानते थे, यह उनका बड़प्पन था। वास्तव में कई लोगों के व्यक्तित्व का विकास उनके ही सान्निध्य से हुआ। तब भी साराभाई की परंपरा में तैयार हुए इन लोगों के बिना कार्य की सफलता बेदाग है यह उतना ही सच है। इन लोगों की सामूहिक

शक्ति वैयक्तिक ताकत की तुलना में बहुत अधिक थी। समर्थ नेतृत्व की यह एक जीती जागती मिसाल है कि जहां सामूहिकता टुकड़ों में बंटे गोला बारूद के समान है। मानवीय गणित में दो और दो चार ही होते हैं ऐसा नहीं, वे तीन भी हो सकते हैं। लेकिन साराभाई जैसा व्यक्तित्व दो और दो को मिलाकर पांच का सामर्थ्य जुटा देता है। वेली तुंबा की यह जादूगरी इसकी जीवंत मिसाल है।

17. युग निर्माता का अंत

तुंबा वेली परिसर में अब कार्य अत्यंत उच्च स्तर पर पहुंच गया था। कई तरह के उद्यमों और गतिविधियों की भरमार वहां थी। नियंत्रण और मार्गदर्शन विभाग की 'अतिस्वच्छता की सुविधा', वायुगतिक विज्ञान विभाग की ध्वनि से कम और अधिक गति के 'वायु बोगदा' की प्रणाली, विद्युत परमाणु विभाग की कागजी सर्किट की प्रयोगशाला, भौतिक विज्ञान विभाग की हवा द्रवीकरण प्रणाली एवं मूल्यमापन की अनेक सुविधाएं, आदि बातों ने एक समय की उपेक्षित बंजर भूमि को हराभरा कर दिया था। यह घटित होते समय एक दो किलो वजन का पे लोड आठ दस किलो मीटर तक प्रक्षेपित करने वाले दर्जे के 'प्रक्षेपास्त्र' इतिहास हो चुके थे। उनके स्थान पर सौ कि.ग्रा. वजन का पे लोड 300 से 350 कि.मी. ऊंचाई तक ले जाने वाले एक से अधिक दर्जे के आधुनिक प्रक्षेपास्त्र आ गए थे। प्रमुखतः नियंत्रण एवं मार्गदर्शन रहित पारंपरिक 'प्रक्षेपास्त्र' की आवश्यकतानुसार नियंत्रित एवं मार्गदर्शित करने की क्षमता विकसित हुई थी।

श्रीहरिकोट्टा के घन प्रणोदक कारखाने के साथ ही वहां के 'प्रक्षेपास्त्र' प्रक्षेपण केंद्र में जमीनी परीक्षण एवं मूल्यमापन प्रणाली और सभी प्रशासकीय सुविधा तुंबा के वरिष्ठ वैज्ञानिकों के जरिए कार्यान्वित की गई थी। टल्र्स के प्रमुख एच. जी. एस. मूर्ति, वायुगतिक विज्ञान विभाग के प्रमुख डॉ. वाई. जनार्दन राव और प्रॉपल्शन विभाग के प्रमुख डॉ. ए. ई. मुत्तुनायगम जैसे वरिष्ठ वैज्ञानिक इसमें थे।

चालीस कि.ग्रा. वजन का रोहिणी उपग्रह अंतरिक्ष की कक्षा में छोड़ने के लिए एस. एल. वी. तीन (सैटेलाइट लांच वेहिकल तीन) परियोजना डिजाइन स्तर को पार कर चुकी थी। उपग्रह विज्ञान तकनीकी विकसित करने के लिए डॉ. यू. आर. राव के मार्गदर्शन में इसरो सैटेलाइट सेंटर (आई. एस. ए. सी) नामक एक अलग केंद्र बंगलोर में बनाया गया था। उपग्रह में निहित विविध उपकरण, उसका पे लोड और अंतरिक्ष अनुसंधान के उपयोग का पता लगाने वाला अंतरिक्ष उपयोग केंद्र (एसएसी) अहमदाबाद में स्थापित हुआ था। प्रो. यशपाल वहां के प्रथम प्रमुख थे। वे यूएनओ (संयुक्त राष्ट्र संघ) में जाने के बाद विक्रम साराभाई के अत्यंत नजदीकी सहकर्मी और अंतरिक्ष

अनुसंधान राष्ट्रीय समिति के सभासद सचिव तथा प्रो. एकनाथ चिटणीस सेक (Sac) के मुख्य अधिकारी बने। इसके अलावा उपग्रहों की जानकारी देने वाली प्रणाली देश में अनेक स्थानों पर विकसित की गई थी। सबसे महत्वपूर्ण यह था कि तुंबा में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से वैज्ञानिक प्रयोग करने के लिए भारत के पास 'प्रक्षेपास्त्र' नहीं थे, इसीलिए विदेशी प्रक्षेपास्त्रों पर निर्भर रहने के दिन खत्म हो चुके थे। ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, इटली, सोवियत संघ राज्य आदि देशों के वैज्ञानिक भारतीय वैज्ञानिकों के सहयोग से विकसित पे लोड भारतीय 'प्रक्षेपास्त्र' से प्रक्षेपित करने के लिए बड़ी संख्या में तुंबा आते रहे थे। भारतीय 'प्रक्षेपास्त्र' की आधुनिकता, परिपक्वता और शक्ति अब विश्व मान्य हो चुकी थी।

जिन्होंने यह सारी प्रक्रिया शुरू की, जिनके उच्चतम प्रबंधन चातुर्य से यह सब संभव हुआ, वे भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान के जनक डॉ. विक्रम साराभाई यह सब देख सकने के लिए हमारे बीच नहीं थे। सही अर्थों में कर्मयोगी की तरह वेली तुंबा, त्रिवेंद्रम इस कार्यस्थल का चिंतन करते करते उन्होंने इस संसार से विदा ली। अंतरिक्ष विज्ञान और तकनीकी यही उनका दिल बहलाव का पहला और अंतिम साधन था। जिनके साथ उन्होंने कुछ साल बिताए और जिनकी उन्होंने अत्यंत स्नेह और सावधानी से परवरिश की, अपने उन सहयोगियों के साथ वे लगभग आधी रात तक चर्चा कर रहे थे।

29 दिसंबर, 1971 की रात लगभग 11.00-11.30 तक हम दस बारह लोग उनके साथ कोवलम में थे। विषय था—तुंबा वेली, अंतरिक्ष अनुसंधान और तुंबा वेली और अंतरिक्ष अनुसंधान...हम वहां से निकले, क्योंकि दूसरे दिन सुबह पांच बजे से ही उनकी दिनचर्या शुरू होती थी। लेकिन नियति ने दिनचर्या में कुछ और ही लिखा था।

30 दिसंबर, 1971 की सुबह 5 बजे फोन बजा। प्रणोदक विभाग में कहीं कोई दुर्घटना तो नहीं हुई, इसी आशंका से मेरा मन ग्रसित था।

हां, दुर्घटना हुई थी। जो सोची वह नहीं, पर जो शंका थी वह दुर्घटना हुई होती तो भी मंजूर होती...लेकिन जो दुर्घटना हुई थी उस नुकसान की भरपाई कभी भी होने वाली नहीं थी।

केवल 5.30 घंटे पहले हम उनसे बतिया रहे थे और अब वे नहीं थे। नियति ने अपने समयचक्र के अनुसार उन्हें हमसे छीन लिया था। अनेक बातों ने विक्रम साराभाई के व्यक्तित्व को महान बनाया। भारत के प्रधानमंत्री ने कहा, "लेकिन, मानवीय जीवन के अंतिम उद्देश्य के प्रति विज्ञान की उपयोगिता के संदर्भ में उनकी मानसिकता ने उन्हें साधारण बना दिया था।" शेष सभी कुछ कोरा इतिहास है—कोरा, कोरा सिर्फ कोरा इतिहास।

18. विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र

अंतरिक्ष अनुसंधान का अणु ऊर्जा से कोई संबंध नहीं था। डॉ. साराभाई अब तक के प्रमुख सेतु थे। फरवरी 1972 में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक बैठक बुलाई। इसरो की तरफ से श्री मूर्ति और मैं उपस्थित थे। बैठक में अंतरिक्ष अनुसंधान की बढ़ती व्यापकता के मद्देनजर यह विषय अणु ऊर्जा विभाग से पृथक करने की संभावना पर विचार हुआ।

सन् 1972 के अप्रैल में तुंबा वेली की सभी परियोजनाएं एक नए संस्थान के अधीन की गईं। विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र (विक्रम साराभाई स्पेस सेंटर) वी एस एस सी यह नामकरण किया गया। बैंगलोर के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस के प्रमुख और वरिष्ठ वैज्ञानिक प्रो. सतीश धवन इसरो के अध्यक्ष बने। साथ ही नवनिर्मित अंतरिक्ष आयोग के भी। भाभा अनुसंधान केंद्र के एक निष्णात वैज्ञानिक डॉ. ब्रह्मप्रकाश विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र के प्रथम निदेशक के रूप में नियुक्त हुए।

डॉ. साराभाई के बाद इस परिवर्तन से भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम के नए देदीप्यमान पर्व की शुरुआत हुई। उपग्रह प्रक्षेपक वाहन औ आधुनिक 'प्रक्षेपास्त्र' विकसित करना त्रिवेंद्रम केंद्र का मुख्य उद्देश्य था। लेकिन इन दोनों में क्या फर्क था? वाहन अत्याधुनिक 'प्रक्षेपास्त्र' ही होता है। फर्क इतना है कि वाहन पर नियंत्रण और मार्गदर्शन की सुविधा होती है और उपग्रह को ढोती भी है। यह वाहन एक से अधिक तल का होता है। उदाहरणार्थ एस एल वी-3 उपग्रह प्रक्षेपक वाहन 4 खंड का था। उसका सबसे ऊपरी खंड जब जलकर खाली हो जाता है, तब उसके सिरे पर के उपग्रह में प्रचंड गति अपेक्षित है। तभी उपग्रह पृथ्वी पर न गिरकर अंतरिक्ष कक्षा में घूम सकता है और कम से कम निश्चित समय सीमा तक अंतरिक्ष की निश्चित कक्षा में रह सकता है। उपग्रह के इस अंतरिक्ष कक्षा में रहने की कालावधि को उपग्रह की आयु कहते हैं।

उपग्रह प्रक्षेपक वाहन का भ्रमण मार्ग प्रक्षेपण के पहले ही तय किया जाता है। इस भ्रमण मार्ग पर उपग्रह की अंतरिक्ष कक्षा तय होनी होती है। वाहन उसे विचलित होने पर नियंत्रण की सहायता से फिर योग्य दिशा में ले जाता है। यह नियंत्रण बनाए रखने का एक मार्ग यानी छोटे 'प्रक्षेपास्त्र'

प्रज्वलित करना है। इसका नियंत्रण और मार्गदर्शन अपने आप वाहन पर से कंप्यूटर की सहायता से होता है। वाहन का प्रत्यक्ष यात्रा-मार्ग पृथ्वी के नियंत्रण केंद्र में कंप्यूटर की स्क्रीन पर दिख रहा होता है। वाहन यदि निश्चित मार्ग से खतरनाक क्षेत्र की ओर बढ़ रहा हो और नियंत्रण की सीमा के बाहर जा रहा हो, तब उसे पृथ्वी पर से भेजे जाने वाले बेतार के आदेश से नष्ट किया जाता है।

विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र का एक काम था ऊपर बताए वाहन को विकसित करना और दूसरा काम था वातावरण के अलग-अलग स्तरों पर जाकर आवश्यक मापन करने वाले 'प्रक्षेपास्त्र' विकसित करना। ये 'प्रक्षेपास्त्र' वातावरण का अनुमान करते हैं, इसीलिए इन्हें साउंडिंग रॉकेट कहते हैं।

ये वातावरण का अंकन करने वाले 'प्रक्षेपास्त्र' उनकी कुछ ही मिनट की यात्रा खत्म होते ही दीवाली के आकाशबाण जैसे पृथ्वी पर आ पड़ते हैं। अंतरिक्ष केंद्र के प्रयासों की तीसरी निष्पत्ति यानी वातावरण अथवा अंतरिक्ष यात्रा के लिए विकसित होने वाले तकनीकी ज्ञान को सामान्य आदमी के अन्य प्रयोजन के लिए उपलब्ध करा देना।

विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र के इन तीन मुख्य उद्देश्यों के अनुसार उनके विभागों की आवश्यकतानुसार पुनर्रचना की गई। संगठन के प्रयत्नों की फलश्रुति लोगों तक पहुंचाना महत्वपूर्ण था। यह निष्कर्ष आधा अधूरा न रखने का हमारा निरंतर प्रयत्न होता। इस उद्देश्य के पीछे संपूर्ण संगठन की समूची मानसिकता अब बन चुकी थी। उपग्रह प्रक्षेपक वाहन यह एक निर्जीव उभयलिंगी नाम, लेकिन सामाजिक परिवर्तन का यह एक वैज्ञानिक साधन था। इसीलिए उसकी आवश्यकतानुसार हाड़-मांस के मनुष्य का कार्यक्रम, उनकी कार्यपद्धति में परिवर्तन करने की सबकी तैयारी थी। जिस संस्था ने विक्रम साराभाई का नाम धारण किया था, उसके उद्देश्य अंततः इस देश के आम लोगों से संबंधित थे।

मनुष्य की वैयक्तिकता महत्वपूर्ण थी, पर देश के संदर्भ में वह नगण्य थी। ऐसा हमारा मानना था और इस बात का हमें गर्व अनुभव होता। मन में आता कि और कितने माध्यमों से विक्रम साराभाई की स्मृतिज्योति प्रज्वलित रखी जा सकती है। बार-बार लगता था, जिसने हमें नया रूप दिया उस साराभाई के देश के लिए और क्या करना चाहिए? हमारे अपने ही देश का एक अलग निकटता का अनुभव एक व्यक्ति के माध्यम से हो, ऐसी थी उनकी स्मृति की महिमा। और क्या कहूं?

19. उपग्रहों का विकास

इसरो के इतिहास में 1972 से 1979 तक का कालखंड बहुत महत्वपूर्ण है। अगली योजना और भविष्य के निर्माण का काल। वैसा ही कुछ नाटकीय घटनाओं-सा। सफलता के बीच असफलता, लुकाछिपी चल रही थी। विज्ञाननिष्ठ संस्थाओं को उस ओर स्थितप्रज्ञ दृष्टि से देखना होता है। सफलता आगे ले जाती है, असफलता पीछे नहीं खींचती, लेकिन बहुत कुछ सिखा जाती है। अत्याधुनिक तकनीकी के विकास में इस धूप छांव की समझ जरूरी है।

'प्रक्षेपास्त्र' और उपग्रह के विकास मार्ग अलग होते हैं। इस भिन्नता का ध्यान रखकर ही उनके स्थान अलग किए गए थे। हमने 'प्रक्षेपास्त्र' का काम तिरुअनंतपुर और उपग्रह का काम बैंगलोर में होता देखा। 'प्रक्षेपास्त्र' विकसन का कार्य बहुत समय लेता है। उपग्रह का विकास अपेक्षाकृत कम समय लेता है। लेकिन अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए दोनों आवश्यक हैं। 'प्रक्षेपास्त्र' चाहिए और उसका सवार उपग्रह भी, इन दोनों के बिना पृथ्वी के मनुष्य के लिए अंतरिक्ष के प्रयत्न संभव नहीं थे।

भारतीय उपग्रह की उपयुक्तता स्वतंत्र रूप से जांचनी संभव थी। इसके लिए सिर्फ भरोसे के वाहन से उसे प्रक्षेपित करना जरूरी था। फिर वह विदेशी हो तो भी चलेगा। तदनुसार 19 अप्रैल 1975 के दिन रशियन रॉकेट 'इंटर कॉसमॉस' की सहायता से सोवियत की भूमि से पहला भारतीय उपग्रह आर्यभट्ट अंतरिक्ष में छोड़ा गया। उपग्रह का वजन था 360 कि.ग्रा.। अंतरिक्ष में उसका कक्ष 620×560 कि.ग्रा. था। देश के उपग्रह कार्यक्रम की शुरुआत आर्यभट्ट की रचना से हुई। इस अनुभव से अगले अधिक पेचीदा उपग्रह के विकास को प्रोत्साहन मिला।

इसी बीच अहमदाबाद के अंतरिक्ष उपयोग केंद्र में दूरदर्शन का उपयोग शैक्षणिक कार्यों के लिए आजमाने में किया गया। उसका नाम सैटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट (SITE) था। शिक्षा का यह देश का सबसे बड़ा प्रयोग था, जिसे दूरदर्शन द्वारा सन् 1975-76 में ATS-6 नामक अमेरिकी उपग्रह की सहयता से पूरा किया गया। दूरदर्शन द्वारा शिक्षा की पद्धति का, विकास परीक्षण और व्यवस्थापन की दृष्टि से, अत्यंत मूल्यवान अनुभव इस वर्ष मिला और आगे उसका इस्तेमाल भी हो सका। यह प्रयोग हुआ शिक्षा के क्षेत्र में। इसी तरह दूरसंचार क्षेत्र में फ्रैंको जर्मन

उपग्रह सिंफोनी की सहयता से 'स्टेट' नामक प्रायोगिक परियोजना 1977-79 की समयावधि में अंतरिक्ष उपयोग केंद्र ने पूरी की। भारतीय तकनीकी ज्ञान का परीक्षण और मूल्यांकन करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मिलने वाले हर संभव सहयोग का अवसर इसरो ने कभी नहीं गंवाया। डॉ. साराभाई की विचार पद्धति का यह एक भाग था और वह कार्यान्वित हो रहा था। अंतरिक्ष अनुसंधान से मानवता का कल्याण इस सहयोग भावना से होगा, ऐसा उनका विश्वास था। जो सैद्धांतिक रूप से संभव नहीं वह व्यावहारिक रूप से असंभव है, यह हमें मालूम है। इस आसान परीक्षण का उपयोग अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था प्रणाली की योजना में शामिल हो ऐसा उनका आग्रह था।

लेकिन इस अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था प्रणाली में भाग लेने वाले देशों को तकनीकी विकास में पूरी तौर पर सहभागी बनाना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो इसका बेचा जाना तो छोड़िए, यह बहुत समय टिक ही नहीं पाएगी, ऐसा वह कहते थे। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में पाश्चात्य लोगों की तकनीकी ज्ञान विषयक गुप्त भाषा उन्हें निरर्थक लगती, क्योंकि साराभाई का कहना था कि मानव विकास का मूलभूत सिद्धांत यह है कि ज्ञान ताले चाबी में छुपाकर बहुत समय तक नहीं रखा जा सकता, वह औरों को देकर ही उसके दुरुपयोग पर अंकुश लगाया जा सकता है, ज्ञान प्रसार पर कृत्रिम बाधाएं खड़ी करके नहीं। तकनीकी ज्ञान का प्रसार सिर्फ समय का प्रश्न है। उसके रहस्य का गलत प्रचार करना अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में खटास पैदा करने जैसा है। कम से कम अंतरिक्ष अनुसंधान में ऐसा न हो इस हेतु साराभाई ने खूब प्रयास किया। उन्हें थोड़ी बहुत सफलता भी मिली। सन् 1972 से 79 तक की कालावधि से यह स्पष्ट होता है।

20. वे एक विशाल सागर

इसरो की कहानी का काव्यात्मक रस लेने के लिए कुछ तकनीकी विशेषताओं को जान लेना आवश्यक है। तभी उन कार्यों की गुणग्राह्यता अधिक अच्छी तरह हो सकेगी। इस हेतु कुछ बातें बहुत सरल भाषा में कहने की कोशिश मैं करता हूं।

सन् 1919 में अपने एक क्रांतिकारी प्रबंध में रॉबर्ट गोडाल्ड नामक वैज्ञानिक ने एक वक्तव्य दिया। अत्यंत साहस भरा वक्तव्य। कहीं कुछ नहीं था। 'प्रक्षेपास्त्र' अभी प्रक्रिया में ही थे। ऐसे समय गोडाल्ड बोले कि 'प्रक्षेपास्त्र' को इतनी प्रचंड गति दी जा सकेगी कि वह पृथ्वी पर वापस ही नहीं लौटेगा। यह कहना कितना हास्यास्पद लगेगा, इसकी कल्पना कीजिए क्योंकि ऊपर फेंकी हुई कोई भी चीज गुरुत्वाकर्षण से नीचे आती है। यह सत्य उस समय काल से परे था। गोडाल्ड ने केवल इतना ही नहीं कहा, उन्होंने विधिवत् प्रयोग और गणित का अध्ययन किया। फिर उन्होंने अगला वक्तव्य दिया, तदनुसार उन्हें दस टन वजन का विशाल 'प्रक्षेपास्त्र' अभिप्रेत था, जिसके द्वारा इतना मैग्नीशियन पाउडर ले जाते बनेगा कि चंद्रमा का न दिखने वाला कोना भी झलक जाएगा।

सन् 1919 में रॉबर्ट गोडाल्ड का यह वक्तव्य कितना ही सनसनीखेज लगा हो, लेकिन वह सच था। उनके वक्तव्य की पड़ताल भी संभव थी। सिर्फ उसके लिए ऐसे शक्तिशाली रॉकेट मोर्टार की आवश्यकता थी जो रॉकेट को इतनी प्रचंड गति दे। भारत के 'ध्रुवीय प्रक्षेपक उपग्रह प्रक्षेपक वाहन' के प्रथम खंड का मोर्टार यह नहीं कर रहा था क्या? हमारे देश में हमारे अपने अनुसंधान तकनीकी ज्ञान और अभियांत्रिकी द्वारा निर्मित सौ प्रतिशत भारतीय रॉकेट मोर्टार। गोडाल्ड दस टन वजन के रॉकेट के विषय में कह रहे थे। केवल हमारे एक खंड के रॉकेट मोर्टार के प्रणोदक का वजन ही एक सौ पच्चीस टन था और अब तो उसमें और बढ़ोतरी हुई थी। यों ही नहीं था यह विश्व का तीसरा बड़ा रॉकेट मोर्टार।

ऐसा रॉकेट मोर्टार विकसित करना विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र के अनेक कामों में से एक है, यह अभी हमने देखा। लेकिन उस रॉकेट मोर्टार के 'प्रक्षेपास्त्र' को इतनी गति देना कि 'प्रक्षेपास्त्र'

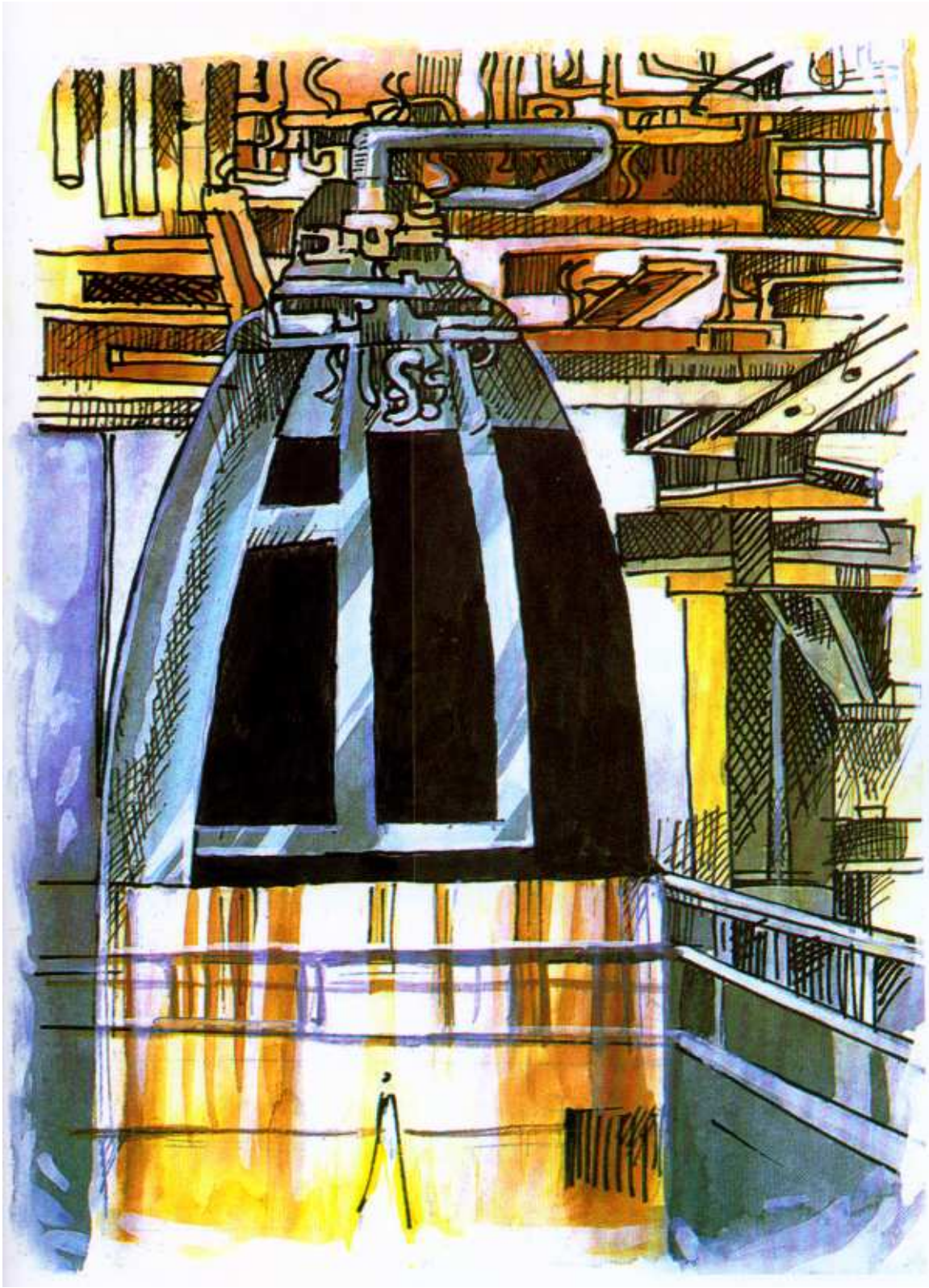

पृथ्वी पर लौटेगा ही नहीं यह मामला क्या है? यहां थोड़ा समझ का फेर है। बहुधा हम पढ़ते या कहते हैं कि भारत ने एस एल वी-3 'प्रक्षेपास्त्र' अंतरिक्ष में छोड़ा। यह वक्तव्य सही नहीं, 'प्रक्षेपास्त्र' अंतरिक्ष में नहीं जाता। अंतरिक्ष में जाता है उपग्रह। वह 'प्रक्षेपास्त्र' के सिरे पर बैठाया जाता है। अंतरिक्ष की कक्षा में जाने के लिए आवश्यक गति देनी होती है। वह गति 'प्रक्षेपास्त्र' से उपग्रह को मिलती रहती है। लेकिन अंततः अंतरिक्ष में जाता है सिर्फ उपग्रह। 'प्रक्षेपास्त्र' खंड जलकर पृथ्वी पर गिरते रहते हैं।

अंतरिक्ष की कक्षा में जाने के लिए उपग्रह को प्रचंड गति क्यों देनी होती है? एक उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। पानी से भरी हुई बाल्टी क्या आपने कभी घुमाई है? ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर, इस तरह अगर गति अच्छी होगी तो पानी गिरेगा नहीं, बाल्टी सिर के बल उल्टी होगी तो भी नहीं। एक क्षण के लिए हाथ ढीला छोड़िए या गति कम कीजिए और तब देखिए कि सारा पानी आपको नहला देगा। अंतरिक्ष में घूमने वाला उपग्रह बाल्टी के पानी जैसा है। पानी की गति उपग्रह की गति जैसी है। आपके घूमने वाले हाथ की तुलना गुरुत्वाकर्षण के खिंचाव से है। जब तक उपग्रह एक निश्चित गति से घूमता है तब तक उसे अंतरिक्ष में फेंक देने वाली शक्ति गुरुत्वाकर्षण की शक्ति से टकराती है और उपग्रह गुरुत्वाकर्षण से परे निश्चित कक्षा में घूमता रहता है।

अब इस उपग्रह की गति कितनी हो? यह गति, उपग्रह पृथ्वी से कितने ऊंचाई पर अवस्थित है, इस पर निर्भर करेगी। साधारणतः कक्ष में घूमने वाले उपग्रह की गति यदि एक सेकेंड में आठ कि.मी. है, तो उस कक्ष में कितने ही महीने वह समान गति से घूम सकता है। अब पृथ्वी से 600 कि.मी. की दूरी पर भी अलग-अलग वायुमंडलीय दबाव होते ही हैं। वे घूमने वाले उपग्रह को बाधित करते हैं। उपग्रह की गति समयांतर से कम होती है। गरगर घूमने वाली बाल्टी की गति कम होने पर जैसे पानी बदन पर गिरता है वैसे ही उपग्रह की गति जब बहुत कम होती है तब वह पृथ्वी की ओर और अधिक गति से खिंचा जाता है। पृथ्वी के करीब के वातावरण से टकराव होने पर उसमें से निर्मित उष्मा से उपग्रह जल जाता है। उपग्रह का निर्धारित समय इस तरह खत्म होता है।

ऐसे उपग्रह प्रक्षेपक वाहन का प्रक्षेपण इसरो के श्रीहरिकोट्टा स्थित केंद्र से होता है। विक्रम साराभाई के कार्यकाल में ही चेन्नई की उत्तर दिशा में 100 कि.मी. की दूरी पर आंध्रप्रदेश का यह बंदरगाह इसरो ने लिया था। पृथ्वी की पश्चिमी दिशा से पूर्व दिशा की ओर घूमने वाले 'प्रक्षेपास्त्र' के लिए लाभदायक बंदरगाह भारत के पूर्व किनारे पर होना आवश्यक था। तदनुसार 'शारसेंटर' था। सुरक्षा की दृष्टि से विस्तृत और बस्ती से दूर यह एक आदर्श प्रक्षेपण केंद्र था।

21. समर्थ भारत का निर्माण

'प्रक्षेपास्त्र' विकसन, फिर वह छोटा 'प्रक्षेपास्त्र' हो या उपग्रह प्रक्षेपक का हो, विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र का दायित्व था। इसरो के व्यय में से लगभग दो तिहाई खर्च और मानव संसाधन इस विकसन के लिए आवश्यक था। केवल इतने से कार्य की जटिलता का पूरा अंदाजा नहीं होता। उस अनुमान के लिए तकनीकी चुनौतियां समझनी होंगी। उसकी तकनीकी जटिलताओं को जानना होगा। इसके लिए 'प्रक्षेपास्त्र' के विकास की ओर एक नजर देखना तथा कुछ मूलभूत बातों को समझना जरूरी है।

क्या आपने कभी छोटी नाव से किनारे पर छलांग लगाई है, या किसी को छलांग लगाते देखा है? जब हम नाव से छलांग लगाते हैं तब वह नाव विपरीत दिशा में खिसकती है। यहां हम छलांग लगाने की क्रिया की प्रतिक्रिया स्वरूप नाव का विपरीत दिशा में खिसकना देखते हैं। नाव का पीछे जाना और 'प्रक्षेपास्त्र' का ऊपर जाना ये दोनों 'प्रतिक्रियाएं' हैं।

हवा से भरे गुब्बारे का मुंह खोल दिया जाए तो क्या होगा? निश्चित ही गुब्बारे की हवा बाहर आएगी और गुब्बारा उड़ान लेगा। पहले तेजी से, फिर धीरे-धीरे अंदर की हवा निकल जाने पर वह चपटा होकर निश्चय ही नीचे गिरेगा, क्यों?

गुब्बारे के मुंह से हवा का बाहर निकलना—क्रिया की प्रतिक्रिया है गुब्बारे का उड़ना। न्यूटन के तीसरे नियमानुसार क्रिया और प्रतिक्रिया समान और एक दूसरे के विपरीत दिशा में होती हैं। गुब्बारे की हवा जब निकल जाती है, तब क्रिया समाप्त होती है। परिणामस्वरूप प्रतिक्रिया भी शून्य हो जाती है। इसीलिए गुब्बारा उड़ना बंद होता है। गुब्बारे का उड़ना नाव से किसी के छलांग लगाने पर उसकी विपरीत दिशा में जाने जैसा है। या ऐसा भी कह सकते हैं कि हवा का प्रत्येक कण गुब्बारे की नाव से बाहर आने जैसा है। इस तरह छलांग लगाकर बाहर जाने वाले हवा के कड़ों के खत्म होने तक प्रतिक्रियास्वरूप गुब्बारा उड़ता है।

इस गुब्बारे को देर तक उड़ता रखने का कोई उपाय है क्या? उसके लिए गुब्बारा हमेशा हवा से भरा हुआ रखना होगा। समझिए कि गुब्बारे में कोई ऐसा रासायनिक मिश्रण रखा कि जिससे हवा बनती रहेगी। तब तेजी से वह बाहर आएगी और प्रतिक्रियास्वरूप गुब्बारा उड़ता रहेगा।

इस प्रकार का रासायनिक मिश्रण ही प्रणोदक के रूप में पहले के प्रक्षेपास्त्रों में इस्तेमाल होता था। बंदूक की बारूद तो पुराने समय का रासायनिक मिश्रण था। कभी-कभी प्रणोदक द्रवरूप में होते हैं, तो कभी द्रव और घन दोनों तरीके से इस्तेमाल होते हैं। इन्हें संकर (हायब्रिड) प्रणोदक कहते हैं।

अब ज्वलन होते ही ऊर्जा निर्मिति तो होगी ही। इस ऊर्जा के आगे गुब्बारा कैसे टिकेगा? तब स्वाभाविक रूप से ईंधन इस्तेमाल करना हो, तो रबर के स्थान पर किसी धातु को लेना होगा। दीवाली के आकाशबाण में मोटा कागज या पुठ्ठा इस्तेमाल होता है, जिसमें प्रणोदक रखने और जलने की जगह बनाई जाती है। अंतरिक्ष दर्जे का प्रणोदक जब जलता है, तब दो हजार पांच सौ अंश सेंटिग्रेड से अधिक तापमान निर्मित होता है। तब ऐसे में मोटा कागज या पुठ्ठा कैसे टिक पाएगा? ऐसे में ज्वलन की टंकी मजबूत एवं मोटी धातु की होनी चाहिए। लेकिन 2500 अंश तापमान पर बहुधा सभी धातुएं पिघल जाती हैं। इसीलिए उस धातु का ऊर्जा से बचाव करने के लिए कुछ खास संरक्षणात्मक आवरण धातु की भीतरी परत पर देना होता है। इन सबके कारण 'प्रक्षेपास्त्र' का वजन बहुत बढ़ता है। तब वह कम करने के लिए...।

प्रक्षेपास्त्र के विकास का यह कभी न खत्म होने वाली हनुमान की पूंछ जैसा इसरो का एक समय था। एक समस्या सुलझाते वक्त दूसरी उठ खड़ी होती। उसे सुलझाते सुलझाते तीसरी। इसकी झलक के रूप में पहले एक छोटी शाखा का उदाहरण दिया गया है। तकनीकी विभाग की ऐसी सैकड़ों गुत्थियां स्वतंत्र चुनौतियां ले उपस्थित होतीं। उन गुत्थियों से प्रक्षेपास्त्र विकास की वास्तविक जटिलताएं सामने आतीं। उनके अनेक रंग होते, उनका सफलतापूर्वक मुकाबला करना विज्ञान और तकनीकी ज्ञान की बहुधा सभी शाखाओं में निपुणता हासिल किए बिना संभव नहीं होता।

इन सबके बीच यह सब अपने ही देश में स्वयं के प्रयत्नों से करना था, क्योंकि विदेशों से यह तकनीक मिलना संभव नहीं था, शर्मनाक शर्तों के बिना, और यह शर्मनाक शर्तें हम स्वीकार नहीं कर सकते, ऐसा साराभाई हमेशा कहते। क्योंकि प्रश्न देश की अस्मिता का था, उनके मतानुसार तकनीकी विकास की कठिन चुनौतियां स्वीकारने में ही सच्चा पुरुषार्थ था। उन चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए एक नए आत्मविश्वास से भरे समर्थ भारत का उदय हो रहा था।

22. निराशा

बहुत साल बीते। सन् 1979 वर्ष बार-बार आंखों के सामने आता है। वर्ष का आरंभ आशादायी था। उत्तरार्ध आत्मपरीक्षण का था। सावन की धूप-छांव का जैसे खेल चल रहा हो। थोड़े में क्या गड़बड़ हुई, इतनी सीधी बात की ओर ध्यान क्यों नहीं गया? ऐसे असमंजस के दिन थे। साथ ही सहकर्मियों की गलतियों को पचाने वाले नेतृत्व के भी। वैज्ञानिकों द्वारा गलती करने की स्वतंत्रता अबाधित रखने के लिए जूझने वाले साराभाई की परंपरा का भी वह समय था। उन कठिन दिनों में डॉ. साराभाई की कमी प्रॉ. सतीश धवन और डॉ. ब्रह्मप्रकाश जैसे वरिष्ठ वैज्ञानिकों ने महसूस नहीं होने दी। सामान्य रूप से पारस स्पर्शित क्षण की स्मृतियां मनुष्य बार-बार जीना चाहता है। सन् 1979 में ऐसे क्षण कुछ ज्यादा नहीं थे। पर जो थे, उनकी गुणवत्ता अलग थी। वही नेतृत्व यदि उसी जोश से खड़ा हो, तो सन् 1979 वर्ष को फिर से जीने की हमारी तैयारी थी।

सन् 1979 की शुरुआत हुई 'मोनेक्स 1979' के प्रयोग से। यह एक भौगोलिक वातावरण अनुसंधान अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम था। विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र ने वह सफलतापूर्वक पूरा किया। इस प्रयोग के कारण उड़ीसा के बालासोर में प्रक्षेपास्त्र के प्रक्षेपण की सुविधा कार्यान्वित हो सकी। इस कार्यक्रम के मानसून संबंधी प्रयोगों के लिए केंद्र ने 'रोहिणी-200' शृंखला के 182 भारतीय प्रक्षेपास्त्र इस वर्ष में प्रक्षेपित किए। इन प्रक्षेपास्त्रों द्वारा वातावरण के संदर्भ की आधार सामग्री जुटाई गई। उसका उपयोग मानसून संबंधी अध्ययन करने के लिए हुआ। बादलों के संबंध में सही अनुमान का हमारी अर्थव्यवस्था की दृष्टि से बहुत महत्व है।

जून 1979 में भारत का दूसरा उपग्रह 'भास्कर-1' प्रक्षेपित किया गया। रूस के इंटरकॉसमॉस प्रक्षेपास्त्र की सहायता से रूस की भूमि से 444 कि.ग्रा. वजन का यह उपग्रह पृथ्वी का निरीक्षण करने के लिए था। उसके लिए 'भास्कर-1' में दूरस्थ बोध के दो कैमरे लगाए गए थे। अधिकतम परियोजना सफल हुई पर पूर्णतः नहीं।

10 अगस्त, 1979 के दिन भारत का स्वनिर्मित प्रक्षेपास्त्र 'शार' केंद्र से उड़ान के लिए तैयार था। सात मंजिली इमारत जितना ऊंचा 17 टन वजन का चार खंडों का। नियंत्रण और मार्गदर्शन की

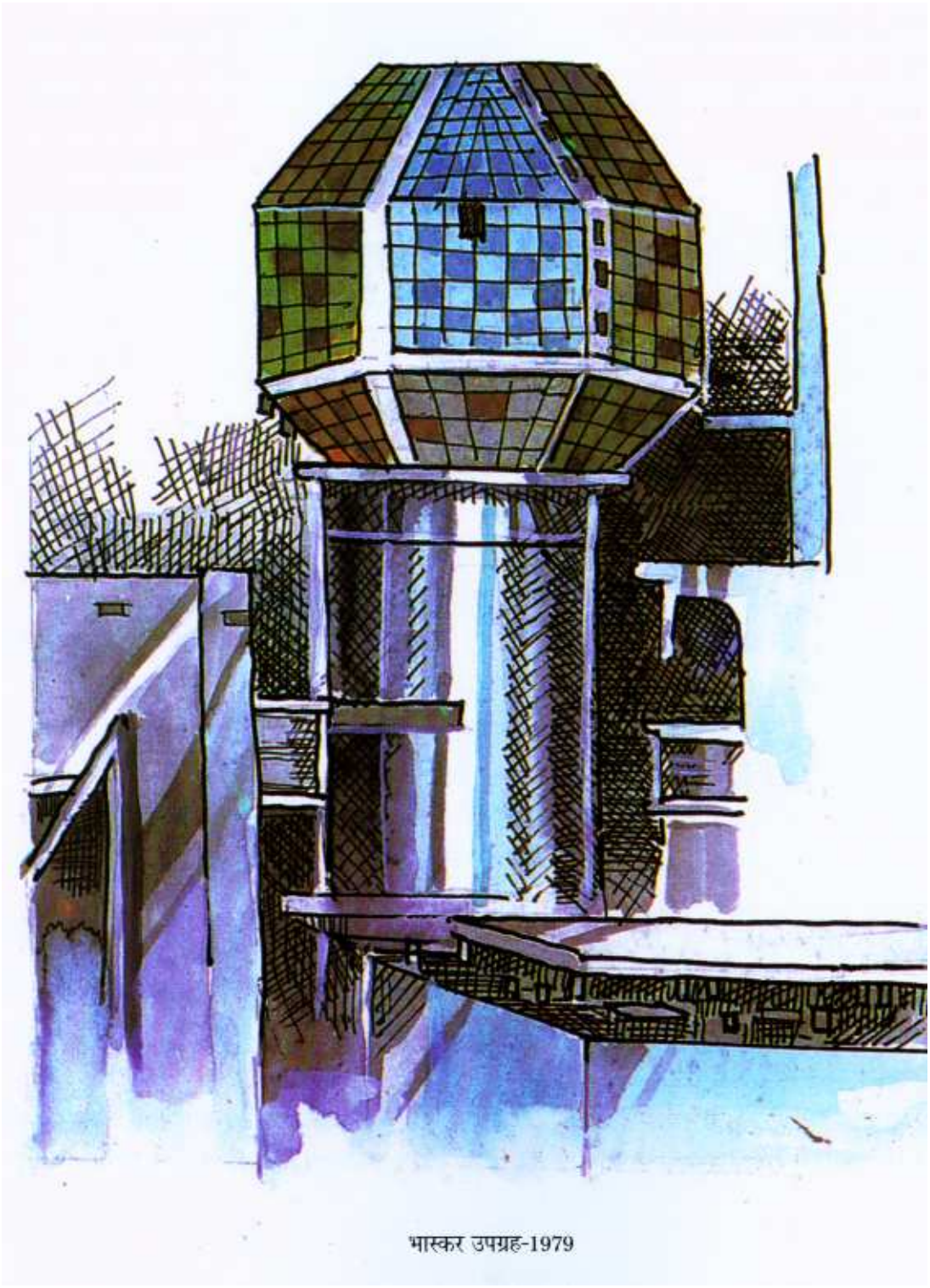

भास्कर उपग्रह-1979

सुविधा से युक्त, घन प्रणोदक पर अंतरिक्ष मार्ग से संकेत लेने वाला 35 कि.ग्रा. वजन का 'रोहिणी' उपग्रह अग्रभाग पर स्थित। एक दशक पहले 10 कि.ग्रा. वजन के प्रक्षेपास्त्र के इर्द-गिर्द ही घूमने वाले देश ने तकनीकी ज्ञान में 17 सौ गुनी गगनचुंबी उड़ान भरी थी। विश्वविद्यालय और अनुसंधान संस्थान की विद्वत्ता का, देश की औद्योगिक क्षमता का अधिकाधिक उपयोग कर विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र के निर्देशन में यह देदीप्यमान वाहन विकसित करना संभव हुआ। 'उपकरण जोड़ने' के बाद ऐसा वाहन प्रक्षेपण के लिए तैयार करने में ही परियोजना का आधा यश हासिल हुआ था। शेष आधी सफलता अभी हाथ आनी थी। यद्यपि चारों ही रॉकेट मोर्टारों ने अपना अपना काम मुस्तैदी से पूरा किया, अन्य लगभग सभी व्यवस्थाएं भी पूरी हो गई थीं तथापि अंतिम ध्येय असफल रहा। 'अंतरिक्ष जगत में बहुधा सब' यह संज्ञा अधूरी होती है। 80-90 प्रतिशत ठीक होना यह स्वीकारने योग्य अपूर्णांक माना जाता है। अंतिम ध्येय के लिए 100 प्रतिशत से नीचे सब कुछ व्यर्थ होता है यानी शत प्रतिशत पूर्णता। इस सीमित दृष्टिकोण से देखने पर, 'एसएलवी-3' की पहली उड़ान असफल हुई थी। यह हादसा अनपेक्षित था। लगभग सभी लोग चकरा गए थे, सन्न रह गए थे। अगली दिशा एकदम धूसर सी जान पड़ती थी। बहुत समय बाद एकदम घुप्प अंधेरे में टटोलने जैसा लग रहा था।

23. दुष्कर दायित्व

एसएलव-3 का 10 अगस्त, 1979 के दिन किया गया परीक्षण असफल अवश्य हुआ लेकिन वैज्ञानिक इस परीक्षण को केवल सफल-असफल या यश-अपयश के नजरिए से नहीं देख सकते। सफलता-असफलता के विश्लेषण में सफलता के साथ असफलता को कुछ अंक तो मिलते हैं—ऋणात्मक अंक। अगले प्रयास में अधिक सक्षम रूप से परीक्षण करना होता है और कमियों को दूर करना होता है। 100 प्रतिशत सफलता की कामना स्वाभाविक है। लेकिन सफलता का मार्ग असफलता के बिना सिद्ध नहीं होता। इस असमंजसपूर्ण मार्ग पर असफलता को अपनी इच्छा के विपरीत भी रोका नहीं जा सकता। उसके अस्तित्व में ही उस पर विजय पानी होती है। असफलता के प्रतिशत को निष्प्रभावी करने के लिए सफलता के मार्ग पर पराकाष्ठा तक पहुंचना होता है।

यह सब होने पर भी एसएलवी-3 की असफलता की चोट सबके कलेजे को लगी। विशेषतः असफलता का कारण विकट विफलता लाने वाला था।

क्या था वह?

प्रक्षेपक वाहन निश्चित दिशा से भटक रहा हो, तो उसे सही मार्ग पर लाने की विधि वाहन पर ही होती है और अपने आप क्रियान्वित होती है। यह हमने देखा। उसके लिए लगने वाला नियंत्रण, शक्ति निर्माण करने का एक साधन यानी द्रव प्रणोदक पर से चलने वाले छोटे-छोटे प्रक्षेपास्त्रों का इस्तेमाल। इसके लिए द्रव रूप विस्फोटक मिश्रण प्रक्षेपास्त्र में निर्धारित जगह पर प्रक्षेपण से भरना होता है। प्रक्षेपण से कुछ समय पहले ही इस द्रव प्रणोदक को इंजिनों को दूरस्थ संपर्क 'गरम' करने की आज्ञा देनी होती है। नियंत्रण कक्ष के परदे पर यह गरम करने की क्रिया सफलतापूर्वक संपन्न होती हुई हमने देखी। अब कुछ मिनट में वह 22 मीटर ऊंचाई का अजस्र यंत्र सीढ़ी पर से उठकर अंतरिक्ष की ओर उड़ान भरने वाला था। तदनुसार कर्णभेदी एक प्रदीर्घ आवाज वायुमंडल में गूंज उठी। ...कई मीटर लंबी ज्योति से चारों ओर चकाचौंध हुई...और ऐसी आग बबूला ज्योति बड़े गर्व से बाहर फेंकते हुए एस एल वी-3 प्रक्षेपास्त्र ने बड़ी शान से अंतरिक्ष की ओर कूच किया।

लेकिन एक घटना प्रक्षेपास्त्र के सीढ़ी पर अवस्थित होते समय ही घटित हो चुकी थी। साधारण घटना, पूरी तरह सुधार कर सकने जैसी घटना...। लेकिन तब, जब उस पर प्रक्षेपण के पहले ध्यान गया होता। हुआ यह था कि 'गरम' करने की उस आज्ञानुसार द्रव प्रणोदक का वॉल्व दूरसंपर्क से खुल गया था। लेकिन उसका काम खत्म होने के बाद वह बंद नहीं हुआ था। इस कारण ऊपर के एक खंड द्वारा नियंत्रित प्रणोदक प्रक्षेपण के पहले ही बह गया। ऊपर के खंड के नियंत्रण की जब जरूरत थी, तब उचित पद्धति क्रियान्वित करने के लिए द्रव ईंधन बचा ही नहीं था। परिणामस्वरूप शेष सभी दृष्टिकोणों से अत्यंत मनोरम इस वाहन की प्रक्षेपण की घटना बंगाल की खाड़ी में असमय नाटकीय ढंग से भरभरा कर खत्म हो गई थी।

इसरो के लोग इस प्रक्षेपण के लिए रात-दिन जुटे रहे, सफलता की कोई कसर उन्होंने बाकी नहीं रखी थी। सफलता का मार्ग कई बार असफलता का उतार-चढ़ाव झेलता जाता है। यह तो ज्ञान था तभी यह दुर्घटना अपनी पहचान छोड़ गई। लेकिन इस शोकांतिका का और एक पहलू था। विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र के कुशल निदेशक डॉ. ब्रह्मप्रकाश का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। केंद्र के प्रथम निदेशक के नाते तुंबा-वेली की सभी परियोजनाओं का, इससे संबंधित लोगों के मन का अत्यंत प्रेमपूर्वक मिलाप उन्होंने किया। एसएलवी-3 जैसी परियोजना को खड़ा करने के लिए संस्थान की सारी ताकत उन्होंने लगाई थी। इस समय वे लगभग 70 वर्ष के थे। उनके प्रदीर्घ और गौरवपूर्ण कार्य जीवन में एसएलवी-3 के सफल प्रक्षेपण ने सोने में सुहागा कर दिया होता लेकिन वैसा नहीं होना था। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण था।

वसंत गोवारीकर

तुंबा आए हुए मुझे सन् 1979 में बारह साल पूरे हो गए थे। 'प्रॉपलेंट इंजिनिअर' के रूप में मैंने शुरुआत की थी। कालांतर में उस विभाग का प्रमुख, सॉलिड प्रॉपलेंट स्पेस बूस्टर प्लांट जैसी 3-4 परियोजनाओं का प्रमुख, रसायन और पदार्थ समूह का प्रमुख ऐसे कई पायदान मैं

चढ़ता गया। साराभाई, धवन और ब्रह्मप्रकाश को मैंने करीब से देखा था। लेकिन ऐसा देखने वाले मेरे दूसरे सहकर्मी भी थे। उनमें से कुछ तो मुझसे पहले आए थे। शासकीय सेवा के संदर्भ में मैं वरिष्ठ लोगों में था, पर वरिष्ठ नहीं था।

इस पार्श्वभूमि पर 19 नवंबर, 1979 का दिन आया। उस दिन जिन्होंने मुझे 12 साल पहले भारत बुलवाया था, उन्हीं को नामधारी 'विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र' के निदेशक के रूप में भारत सरकार ने मेरी नियुक्ति की। आधा इसरो जहां था, उस सबसे बड़े अंतरिक्ष केंद्र का भारत सरकार ने मुझे प्रमुख बनाया। मैं अभिभूत था, लेकिन उपग्रह प्रक्षेपक वाहन की पहली उड़ान असफल हुए कुल तीन महीने हुए थे। इसरो के मानसिक धैर्य और साहस का यह निम्नतम बिंदु था। अगले मार्ग में धुंधलका था। तिरुअनंतपुरम में अंतरिक्ष केंद्र का प्रमुख बनने का यह बहुत सुविधाजनक समय नहीं था।

24. आरंभ अपने से

वह कमरा डॉ. साराभाई कार्यालय के रूप में इस्तेमाल करते थे। वेली पहाड़ी पर का चौकोर कमरा, एक तरफ पूरी की पूरी कांच की दीवार थी। उस कांच में से घनी झाड़ी, सुरम्य पथरीली पहाड़ी, घुमावदार रास्ते और उसके पार नीला-नीला समुद्र दिखता था। पेड़ों की डालियां कांच के करीब आती थीं। निरंतर पांच महीने मूसलाधार बारिश और बारहों महीने प्रकृति का सौंदर्य निखरता था।

जिस कमरे में डॉ. विक्रम साराभाई बैठते थे उसी कमरे में उन्हीं की टेबल के पास मैं बैठूं? नवंबर 1979 में तिरुअनंतपुरम के अंतरिक्ष केंद्र के निदेशक के रूप में मैंने इस कमरे में प्रवेश किया। तब मेरा मन कुछ सकुचा गया था। अंतरिक्ष अनुसंधान के आरंभिक काल में साराभाई की कितनी चर्चा, योजना और बैठकें इन चार दीवारों ने देखी-सुनी थीं। एक दीवार पर लगे श्यामपट्ट पर कितनी ही खड़िया घिसी थी। बहुत उलझी हुई समस्याओं का उत्तर कांच के पार दिखने वाले नीले समुद्र में साराभाई ने खोजा था। उनका शांत और निश्छल मानसिक संतुलन इसी कमरे ने असंख्य प्रसंगों में देखा था। उसी भवन में उसी कमरे में उसी साराभाई की टेबल के पास उसी निदेशक की कुर्सी पर मैं बैठा था...। एकाएक मैं रोमांचित हो उठा। अत्यंत भावावेश में उठा। टेबल पर रखा गुलदस्ता उठाया और साराभाई की तस्वीर के पास रख दिया। यह सब कुछ क्षणमात्र में हो गया और बहुत बार देखकर भी यांत्रिक लगने वाली कृति भी मन के उठते भावों को उजाला दे सकती है, यह मैंने मन ही मन अनुभव किया।

एक बार मुझे अनुभव हुआ कि यह अंतरिक्ष केंद्र कुछ निश्चेष्ट हुआ सा दिखता है। हरदम सा उत्साह नहीं, छोटे-छोटे समूहों में चर्चा होती थी। शायद हर कोई कुछ कहना चाह रहा था। लेकिन आत्मविश्वास खो गया था। एसएलवी-3 की असफलता को देखकर देश और गांव में सहानुभूति थी। तब भी विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र की लोकप्रतिष्ठा पर आंच तो नहीं आई ना, ऐसी शंका भी होती थी। अंतरिक्ष केंद्र की सैकड़ों बसों, जीपों और गाड़ियों में आने-जाने वालों को लोग अदब से देखते थे। वही गाड़ियां एकाएक किसी की निगाहों में तो नहीं आने लगीं ऐसी बेवजह शंका भी होती। यह फिजूल था क्योंकि प्रत्यक्ष रूप में किसी ने ऐसा संकेत नहीं किया था। हमारे खुद के मस्तिष्क में

चल रहा मानसिक ऊहापोह ही हम शायद अन्य लोगों की निरुद्देश्य गतिविधियों में देख रहे हों। कुल मिलाकर संस्थान की मानसिकता का यह प्रतिबिंब रहा होता। बार-बार फिसलकर भी फिर फिर चढ़नेवाली चींटी के उस प्राप्ति प्रयत्न की मानसिकता की आवश्यकता अब अत्यंत तीव्रता से अनुभव होने लगी थी। प्रणोदक विभाग से संबंधित मेरे पहले के एक सहकर्मी ने बहुत पहले इसे आत्मसात किया था। अन्य विभागों में भी इस ध्येय से प्रेरित अनेक थे। अब सिर्फ इस भावना का सर्वत्र फैलाव होना चाहिए था।

और इस भावना के सार्वजनिक होने की शुरुआत मुझसे ही होनी चाहिए थी। मुझे भी उसकी जरूरत थी, क्योंकि मैं वह कल वाला नहीं था। रासायनिक पदार्थ, प्रणोदक, स्फोटक बस्तुओं में कल तक का बसा मैं खत्म हो गया था और आज मेरा नए रूप में जन्म हुआ था। एसएलवी-3 के असफल प्रक्षेपण के बाद का मैं। हमारी ओर आदर भाव से देखने वाली जनता की अपेक्षा हमने भंग तो नहीं की ना? इस व्यथा में डूबा मैं। सबसे पहले मुझे ही अपने आपको ठीक करने की जरूरत थी।...

मैं उठा और विक्रम साराभाई केंद्र के निदेशक के रूप में अपना पहला हुक्मनामा लिखा। पहले खुद के लिए सामने के फलक पर मोटे अक्षरों में खड़िया से मैंने लिखा "टु स्ट्राइव, टु सीक, टु स्ट्राइव, टु फाइंड एंड नॉट टु यील्ड" "संघर्ष करो, जूझते रहो, नित नए का अनुसंधान करो, अपने ध्येय पर अडिग रहो, आत्मसमर्पण मत करो, हार मत मानो, क्योंकि विजय सिर्फ तुम्हारी है।" बीते कितने सालों में मेरे प्रत्येक कार्यालय में लिखा हुआ मेरा पसंदीदा यह वाक्य मैंने अपने नए कार्यालय में खड़िया से दबा-दबाकर लिखा।

इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही थी।

25. ममत्व का संजीवन

टु स्ट्राइव, टु सीक, टु फाइंड एंड नॉट टु यील्ड यह वाक्य मेरे सूचनापट्ट पर लिखा और तुंबा के नजदीक की झोपड़ी के पास के चारे की कोठरी मुझे स्मरण हो आई। बरसात से दरवाजा कैसा फूल जाता था, यह याद आया और भयानक हवा के साथ आने वाली बारिश से यह वाक्य बार-बार कैसे धुल जाता था, यह भी याद आया। लेकिन अब वह डर नहीं था, बाहर की बारिश अंदर नहीं आ सकती थी।

सन् 1967 में उस चारे के कमरे में सूचनापट्ट पर लिखा हुआ वह वाक्य धुलने पर हमें बहुत झुंझलाहट होती थी। बारी-बारी से उठकर हम हर बार वह फिर लिखते जैसे उस वाक्य के जीवित रहने पर ही हमारा जीवन सलामत रहता हो। हां, यह ऐसा ही था।

और ऐसा महसूस करने वाला मैं अकेला नहीं था। हर एक को ऐसा लग रहा था। इसीलिए वह वाक्य जीवित होने जैसा लगता था जो हमें एकटक देख रहा हो, कहता हो, उठो, निराश मत हो, तुम्हें कोई पराजित नहीं कर सकता, आखिर विजय तुम्हारी ही है।

अब मेरे नए कमरे में इस वाक्य का पहुंचना यह एक नए अध्याय की शुरुआत थी। उसमें छुपी भावना का सब तक पहुंचना आवश्यक था। सबको झकझोर देना चाहिए था। लेकिन वह कैसे?

अब जब अपने विभाग के साथ बड़े होते हैं, जब अपने सहकर्मियों के साथ बड़े होते हैं, तब आप सबको पहचानते हैं। उनका नाम, गांव, वैयक्तिक विवरण आदि सब। सबके साथ निकटता होती है। एक पारिवारिक रिश्ता होता है वह। लेकिन ऐसे अनेक विभागों की संस्था होती है और इस संस्था का जैसे-जैसे आकार जब बड़ा होता है, तब व्यक्तिगत पहचान का दायरा सीमित होने लगता है। उनका संस्था से कोई अलगाव होता है ऐसा नहीं, लेकिन अपनत्व के वे धागे खिंचने लगते हैं, इसीलिए संस्था के विषय में संस्था के उद्देश्य के बारे में, परियोजना के संदर्भ में फिर एक बार अपनत्व का अनुभव कराने के लिए कुछ ठोस और जख्म हरे करने वाले लेकिन असरदार उपायों की आवश्यकता होती है। लोगों को भी वह चाहिए होता है लेकिन हमें वह चाहिए, यह उन्हें ठीक से नहीं समझता।

मैं बताऊं? बच्चा कई बार, चिड़चिड़ाता है। कुछ भी उसे अच्छा नहीं लगता। उसे क्या चाहिए वह खुद भी नहीं जानता। ऐसे समय में उसकी मां कुछ उपयुक्त करती है और बच्चा शांत हो जाता है। संस्थान के बृहद आकार में लोगों की सामूहिक मानसिकता कभी-कभी ऐसी होती है। अलगाव की भावना अंतरमन में हलचल पैदा करती है, तब ममत्व का संजीवन उसे शांत करता है।

ऐसे ही संजीवन की विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र को आवश्यकता थी। उपग्रह प्रक्षेपक वाहन के असफल प्रक्षेपण से उत्पन्न हुई शिथिलता को झटकना जरूरी था। अगले प्रक्षेपण की तैयारी युद्ध स्तर पर करना अपरिहार्य था। अगला प्रक्षेपण जल्द से जल्द होना चाहिए था, और सफल भी...। हां लेकिन प्रयत्न से निष्पन्न परिणाम के बारे में क्या कहें? इस प्रक्षेपास्त्र के एक लाख से अधिक हिस्से हैं। कई कि.मी. लंबे बिजली के तार हैं, एक दूसरे पर निर्भर अनेक प्रणालियां हैं। सफलता इन सबके सहयोग पर निर्भर है। सफलता के लिए जुट जाना भर अपने हाथ है। निष्काम कर्म का भाव वैज्ञानिकों का स्थायी भाव होना चाहिए इसीलिए — कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

26. भावात्मक एकता

विक्रम साराभाई केंद्र में अब लगभग छह हजार लोग थे। भारत की यह दूसरी बड़ी शास्त्रीय संस्था थी।

हम राजनीतिक चेतना और वैयक्तिक अधिकारों के प्रति अत्यंत जागरूक प्रांत केरल में थे। मजदूर आंदोलन की बुनियाद राज्य में गहराई तक पैठी हुई थी। 30-40 लोगों की भी संख्या हुई, तो मजदूरों के व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकार और प्रबंधकों की कर्तव्य भूमिका के बीच सैद्धांतिक विवाद अधिक उभरकर आते थे। इस तरह के सामाजिक प्रवाह से अंतरिक्ष केंद्र जैसे बृहद संस्थान का अलिप्त रह पाना संभव नहीं था। वैज्ञानिकों, तकनीशियनों से लेकर कैंटीनों, वर्कशॉपों में काम करने वालों में से हर एक को समरस और एकरूपता के धागे में पिरोना प्रबंधन के लिए बड़ी चुनौती थी।

एसएलवी-3 की असफलता से अंतरिक्ष केंद्र के मानसिक धैर्य का निर्देशांक नीचे आ गया था। उसे ऊपर उठाने के लिए उपग्रह प्रक्षेपक वाहन का अगला प्रक्षेपण सफलतापूर्वक होना जरूरी था। प्रक्षेपण की सफलता-असफलता को हर एक को अपने जीवन मरण का प्रश्न बनाना आवश्यक था।

संस्थान और एसएलवी-3 के उद्देश्य के बारे में हरएक के मन में और अधिक अपनत्व का भाव जगाने के लिए कुछ ठोस और परिणामकारक उपाय योजनाओं की आवश्यकता थी। ये उपाय योजनाएं अनेक स्वरूपों में क्रियान्वित करनी थीं। जहां तक हो सके वे व्यक्तिगत स्तर की अपेक्षा सामूहिक स्तर पर रखी जाएं ऐसी कल्पना थी। हम सभी एक दूसरे पर निर्भर हैं यह भावना गहराई तक पैठनी चाहिए थी। जिम्मेदारी का अहसास बृहद संस्थान के अनेक वर्गों को करा देना आवश्यक

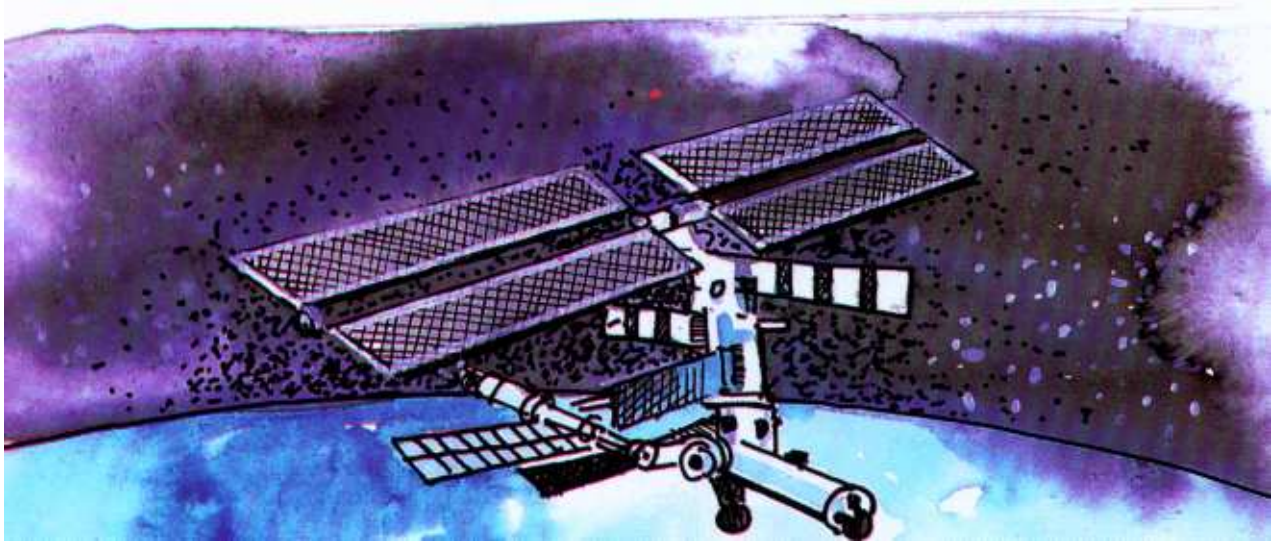

था। विचारमंथन में व्यापकता और उसकी पारदर्शिता को बढ़ाना हमने तय किया। इस कारण संदेह के वातावरण की गुंजाइश नहीं होगी और परस्पर विश्वास का वातावरण अधिक तीव्रता से व्यक्त होगा, यह अपेक्षा थी।

हर एक को अपना काम तो करना ही चाहिए, लेकिन नियमित रूप से जब कभी अपने काम के अलावा भी पूरे संस्थान की ओर देखने का अवसर अधिकाधिक वैज्ञानिकों को मिले, संस्थान के क्रियाकलापों में उनकी सहभागिता हो, संस्थान के प्रति उनका अपनत्व का भाव कई गुना बढ़े ऐसी योजना हमने बनाई।

अधिक खुलासा करने के लिए प्रबंधन की नई विधि का एक उदाहरण देता हूं। अंतरिक्ष केंद्र का विस्तार सैकड़ों हेक्टेअर जमीन पर था, यह हमने देखा। भारत सरकार के अंतरिक्ष विभाग के अंतर्गत सभी संस्थाएं निषिद्ध क्षेत्र में आती हैं। तदनुसार केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल के अधिकारी एवं जवान तैनात थे। लेकिन यह तो हुआ सुरक्षा का औपचारिक रूप। साथ ही साथ भावनात्मक स्तर को उभारना जरूरी था। एक निश्चत समय के बाद अपने नियमित कार्य के अलावा संपूर्ण संस्थान की ओर वैज्ञानिक और अभियंता देख सकें, ऐसा हमें हमेशा लगता था। इसके लिए ड्यूटी ऑफिसर की प्रणाली अमल में लाई गई। अन्य जगहों पर प्रचलित पद्धति की अपेक्षा यह बहुत अलग थी। ऊपर से नीचे तक के सभी अधिकारी ही इसमें थे। रात दिन और हफ्ते के सातों दिन वे काम करते। प्रत्येक आठ घंटे की शिफ्ट में दो वैज्ञानिक होते थे। निश्चित समय सारणी के अनुसार केंद्र के कोने-कोने में वे पहुंचते और किया गया निरीक्षण मुख्य रजिस्टर में विवरण सहित लिख देते। अच्छे प्रशासन की दृष्टि से कई फायदे इससे हो रहे थे।

सर्वाधिक महत्व का मुद्दा भावनात्मक एकता का था। अपनी-अपनी प्रयोगशालाओं में काम करते वक्त अन्य जगह पर चल रहे कामों की उन्होंने कल्पना भी न की होती, यह देखने का अवसर उन्हें मिल रहा था और वह भी 'ड्यूटी ऑफिसर' होने के अधिकार के साथ। इस पद की वजह से उस एक दिन में वे कहीं भी जा सकते थे। केंद्र का जो भाग उसने कभी नहीं देखा था, उसे अब वह देखना संभव था। कई बार उसके निरीक्षण के दौरान बहसबाजी का कोई प्रसंग आ जाता था। लेकिन इस वाद-विवाद, चीख चिल्लाहट से लोग एक दूसरे के करीब आ जाते थे। भावनात्मक एकता साकार हो रही थी या आकार ले रही होती। एसएलवी-3 का प्रक्षेपण सफल होना ही चाहिए यह बहुत गहराई से हरएक को लगने लगा था। विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र अपना है...। एसएलवी-3 परियोजना की सफलता पर अपनी और देश की अस्मिता निर्भर है...। इस विचार की हवा बहने लगी थी। लोग फिर ऊर्जा संपन्न हो रहे थे। अगला प्रक्षेपण सफल होने में अब कोई कसर नहीं थी।

27. आत्मविश्वास फिर एक बार

विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र की प्रबंधन प्रणाली चातुर्यपूर्ण थी। वह कुछ प्रबंधों का विषय बन सकती थी। उसमें से तीन उपयोजनाएं अगले प्रक्षेपण की संभावित सफलता बढ़ाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण थीं। प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण घटक, अंतरिक्ष शास्त्रीय समिति के 70 प्रमुख सभी विभाग और परियोजना के लगभग इस समिति के सदस्य थे। हर महीने के पहले, तीसरे और पांचवें गुरुवार को यह समिति 10 बजे चर्चा सत्र के लिए निर्धारित कमरे में मिलती थी। पूरे केंद्र के शास्त्रीय कार्यक्रमों का अनुमानपत्रक आदि बातों की प्रारंभिक जांच यहां होती थी। हर पंद्रह दिन में लगभग तीन घंटे चलने वाली इस समिति की बैठक शास्त्रीय विषयों पर चर्चा और संभाषण कला का जैसे उत्सव ही थी।

इस समिति का मैं पहले से ही अध्यक्ष था। पहले असफल प्रक्षेपण के बाद नवंबर 1979 में अंतरिक्ष केंद्र का मुख्य कार्यकारी होने के बाद एसएलवी-3 जैसी परियोजना पर, उसकी समस्या पर, उपायों पर ज्यादा से ज्यादा विचार मंथन करने के लिए इस समिति का मैंने इस्तेमाल किया। अंतरिक्ष केंद्र और उस केंद्र की परियोजना के लोगों के बीच नया संवाद इस विचार मंथन से हुआ और अपनत्व के नए संबंध भी बने।

अंतरिक्ष केंद्र में होशियार, अध्ययनशील और कर्तव्यपरायण युवाओं की कमीं नहीं थी। उनके बुद्धि विलास के लिए विभागीय शास्त्रीय समिति में गुंजाइश थी। लेकिन पूरी संस्था, एसएलवी-3 परियोजना अथवा भविष्य के लिए कार्यक्रम के संदर्भ में उन्हें कुछ सुझाव देने हों तो एक औपचारिक मंच की जरूरत थी। इसीलिए 'शास्त्रीय समाज मंच' बनाया गया।

सामान्यतः 300 वैज्ञानिक इसके सदस्य थे। छंदमुक्त विचारों का यह मंच था। कैंटीन में, बस स्टॉप पर या छोटे समूह में जो आनंदाभिव्यक्ति होती, उसका सारगर्भित शास्त्रीय रूप इस नए मंच पर चर्चा के लिए कोई भी ला सकता था। अगले प्रक्षेपण के लिए क्या करना चाहिए और क्या नहीं इस बारे में अपने मत की अभिव्यक्ति का अवसर सबके लिए उपलब्ध था। विशेष बात यह है कि वह मत सुना जाता था। तदनुसार अमुक काम परियोजना प्रमुख ने क्यों किया अथवा निर्णय क्यों

लिया, इस बारे में स्पष्टीकरण प्रमुख युवा वैज्ञानिकों की जानकारी के लिए इस मंच पर लिया जाता। वरिष्ठ कनिष्ठ का भेद यहां नहीं था। इस शास्त्रीय समाज मंच का उपयोग अत्यंत महत्वपूर्ण बातों के संदर्भ में उत्पन्न संभ्रम दूर करने में भी हुआ। एसएलवी-3 परियोजना के अनेक निर्णयों की गुणग्राह्यता यहां हुई। किसी तरह कुछ बहुत अच्छी सूचनाओं पर विचार कर उन्हें स्वीकार करने की परियोजना को अवसर मिला।

एसएलवी-3 परियोजना के लिए उच्चतम स्तर की प्रबंधन समिति थी। अंतरिक्ष केंद्र के निदेशक के नाते मैं इस समिति का अध्यक्ष था। प्रशासनिक, तकनीकी और वित्तीय विषयों की सभी दिक्कतों को अंततः इस समिति के पटल पर निर्णय के लिए रखा जाता। इसके पहले परियोजना की तकनीकी बातों की समीक्षा अंतरिक्ष केंद्र समिति के समक्ष हर हफ्ते होती। बारह वरिष्ठ वैज्ञानिकों की यह उच्चतम समिति, केंद्र निदेशक के कार्यालय में मिला करती। सभी समूह प्रमुख और एसएलवी-3 जैसी परियोजना के प्रमुख इस समिति के सदस्य थे। इसके पहले अलग-अलग मंचों पर संपन्न चर्चा का अंतरिक्ष केंद्र समिति की समीक्षा में पूरा-पूरा उपयोग किया जाता। इस समिति के सदस्य अन्य सभी मंचों के भी सदस्य होते। इस कारण कौन-सी चर्चा किस पार्श्वभूमि पर विस्तार से हुई इसकी हर एक को पूरी जानकारी होती थी।

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

दिन बीत रहे थे। निराशा और विफलता की भावना अब लुप्त हो चुकी थी। उसकी जगह अब आत्मविश्वास ने ले ली थी। आशा और अपेक्षा के वातावरण में परिवेश पूर्ण हो रहा था। अगला प्रक्षेपक वाहन तत्परता से आकार ले रहा था। अंतरिक्ष केंद्र की परियोजना के प्रत्येक व्यक्ति के लिए अगला प्रक्षेपण एक आत्मीयता का विषय बना। उसकी सफलता अपने जीवन मरण से संबंद्ध है, ऐसी भावना निर्मित हुई थी। अगला प्रक्षेपण अब सफल होने में कोई संदेह नहीं था। डॉ. अब्दुल कलाम जैसे समर्थ व्यक्ति एसएलवी-3 परियोजना के प्रमुख थे। यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग था।

28. परिवर्तन का पारस विज्ञान

उपग्रह प्रक्षेपक वाहन के अगले परीक्षण का समय नजदीक था। विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र के कार्यक्रम के बारे में परियोजना के संदर्भ में और भविष्य को लेकर जैसे जो बताना था उस बताए हुए को सुने जाने का सब को इंतजार था। तकनीकी संदर्भ में ऐसी एक भी बात नहीं बची थी, जिसकी ओर ध्यान न दिया गया हो। हम सब श्रीहरिकोट्टा आए थे। कुल मिलाकर उत्साह और आत्मविश्वास उफन रहा था। सबकी जान प्रक्षेपण में अटकी हुई थी। सफलता के लिए सब की शुभकामनाएं बड़ी तादाद में मिल रही थीं। वस्तुतः जब ऐसा हो, तब विफलता को अपना चेहरा दिखाने में झिझकना चाहिए।

और ऐसा हुआ भी। पहले असफल प्रक्षेपण के बाद एक वर्ष के अंदर ही जो एससलवी-3 प्रक्षेपित हुआ उसने पूरे विश्व में भारत का नाम उज्ज्वल किया। 18 जुलाई, सन् 1980 का दिन इसरो के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने जैसा था और राष्ट्र के लिए भी। उस दिन भारत के स्वनिर्मित प्रक्षेपास्त्र द्वारा अंतरिक्ष में प्रक्षेपित 35 कि.ग्रा. वजन का रोहिणी उपग्रह पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाने लगा था। प्रक्षेपण किसी पुस्तक में शोभायमान हो, इतना निर्दोष था।

इस घटना की अनुगूंज बहुत गहरी थी। यह समझने के लिए कुछ दशक पीछे जाना होगा। सन् 1957 के अक्तूबर में सोवियत संघ राज्य में विश्व का पहला कृत्रिम उपग्रह स्पूतनिक अंतरिक्ष में छोड़ा गया। इस घटना के पीछे रूस का संपूर्ण सुरक्षा विभाग का युद्धतंत्र खड़ा था। जर्मनी से प्राप्त वी-2 जैसे प्रक्षेपास्त्र की संपूर्ण तकनीक उपलब्ध थी और द्वितीय महायुद्ध अपनी शर्तों पर जीतने वालों में सोवियत संघ राज्य जैसा साम्यवादी राष्ट्र भी था। ऐसे रूस की तुलना किसी भी बात में भारत से नहीं हो सकती थी। तब भी कृत्रिम उपग्रह स्वनिर्मित प्रक्षेपास्त्र द्वारा अंतरिक्ष में छोड़ने की घटना के संदर्भ में केवल तेईस वर्षों में भारत ने रूस की बराबरी की थी। यह कोई साधारण बात नहीं थी। देश ने जो सफलता अर्जित की थी, उसे किसी भी मानक पर नापा जाए तब भी अत्यंत गौरवपूर्ण था। कोई कहेगा, साल बीत जाते हैं, जब अगली बार उसकी अपेक्षा कई गुना बचत करने वाला विज्ञान आ जाता है। यह सच है तभी इन तेईस वर्षों में अन्य सिर्फ चार राष्ट्रों ने स्वनिर्मित

प्रक्षेपास्त्र से कृत्रिम उपग्रह अंतरिक्ष में छोड़े थे। इसके पहले के पांच देशों की बराबरी पर अब अपना छठा देश था।

अधिकांश उपग्रह राष्ट्रों ने प्रक्षेपक वाहन क्षेपणास्त्र से विकसित किए थे। जापान एक अपवाद था। लेकिन तकनीकी में जापान बहुत आगे था। विकसित राष्ट्रों के विरुद्ध जापान ने दूसरे महायुद्ध में कड़ी टक्कर दी थी।

भारत ने अपना उपग्रह प्रक्षेपक वाहन पूर्णरूपेण स्वदेशी कार्यक्रम में विकसित किया था। और पार्श्वभूमि भी क्या? बारह साल पहले भारत का प्रक्षेपास्त्र केवल दस किलो वजन का, नियंत्रण और निर्देशन की सुविधा से रहित लगभग खिलौने जैसा था।

एससलवी-3 की सफल उड़ान से संपूर्ण इसरो एकाएक जगमगा गई थी। देश में भी नए आत्मविश्वास का वातावरण था। इस उड़ान ने यह सिद्ध किया था कि मन में इच्छा हो, योग्य लोग उपलब्ध हों, उन पर विश्वास रखा जाए, काम की स्वतंत्रता दी जाए, तो इस देश की क्षमता के बाहर कुछ भी नहीं। विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में कोई भी विषय इस देश की क्षमता के बाहर नहीं। समाज परिवर्तन के इस पारस का नाम है विज्ञान। यह भारत की एक अमूल्य निधि है। उसके मात्र एक प्रतिशत इस्तेमाल की आवश्यकता है। यह मानसिकता जब हमारी होगी, तब इस देश की ओर बुरी नजर से देखने की हिम्मत पृथ्वी के किसी भी शक्तिशाली और समर्थ देश की नहीं होगी।

29. भारतीय उपग्रह अंतरिक्ष में

उपग्रह प्रक्षेपक वाहन में लगने वाली सभी जरूरी चीजों का विकास करने की जिम्मेदारी विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद (वी.एस.एस.सी.) के विभाग की थी। अलग-अलग विकास से संबंधित विभागों से पूर्ति करने के लिए वीएसएससी के दो वैज्ञानिक और तकनीशियन एसएलवी से चयनित टीम के सदस्य थे। सकल परियोजना संस्था प्रमुख (श्री कलाम) के प्रति जवाबदेह थी और परियोजना प्रमुख वीएसएससी के प्रति जवाबदेह थे। इस तरह दायित्व का स्पष्ट निर्धारण किया गया था।

अंतरिक्ष केंद्र लोगों के आस-पास रचा बसा था। व्यक्ति महत्वपूर्ण थे, अच्छे लोगों के प्रति गजब की गुणग्राहकता थी। लेकिन किसी को पूजनीय नहीं कहा गया था। व्यक्ति से व्यक्ति निर्माण हो ऐसी अपेक्षा थी। किसी एक के बिना काम न रुके ऐसा अलिखित प्रावधान था। इसरो के समय के इस विचार दर्शन की बहुत कम लोगों को जानकारी थी। यह भी बहुत लोगों को नहीं मालूम कि डॉ. अब्दुल कलाम जैसे दिग्गज के बाद एसएलवी-3 के अगले सभी प्रक्षेपणों की जिम्मेदारी जिनके बारे में बाहरी दुनिया को कुछ पता नहीं था, ऐसे एसएलवी संस्था के एक युवा वैज्ञानिक वेदप्रकाश सैंडलश को सौंपी गई थी। 18 जुलाई, 1980 की सफल उड़ान के बाद दस महीने में वेदप्रकाश के मार्गदर्शन में अगले उपग्रह प्रक्षेपक वाहन का प्रक्षेपण हुआ। 31 मई, 1981 के दिन प्रक्षेपास्त्र का सफलतापूर्वक परीक्षण हुआ। 38 किलो वजन का रोहिणी उपग्रह अंतरिक्ष कक्षा में पहुंचा, लेकिन यह कक्षा बहुत दीर्घ वर्तुलाकार थी। उपग्रह की पृथ्वी से दूरी 200 किलोमीटर से कम थी। परिणामस्वरूप उपग्रह का जीवन काल कुछ हफ्ते का ही रहा।

इसके उपरांत भी प्रक्षेपास्त्र के प्रक्षेपण की सारी तैयारी हो चुकी थी। इतना ही नहीं एसएलवी-3 के चौथे खंड के शक्तिशाली रॉकेट मोर्टार की पृथ्वी से 36,000 कि.मी. दूरी का परीक्षण और मूल्यमापन भी किया गया। यह मोर्टार 'एपल' नाम के उपग्रह पर सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया गया। 'एपल' भारत का पहला प्रायोगिक संपर्क साधक उपग्रह था। तीन अक्षांश पर स्थित यह उपग्रह जितनी संभव थी उतनी स्वदेशी सामग्री से बनाया गया। एरियन नामक यूरोपीय रॉकेट की

सहायता से 'एपल' 19 जून, 1981 के दिन अंतरिक्ष में छोड़ा गया। इसका वजन छह सौ तिहत्तर कि. ग्रा. था। उस पर अनेक प्रायोगिक प्रणालियां सफलतापूर्वक चलाई गई थीं।

भारत का आत्मविश्वास अब बहुत बढ़ गया था। सफलता मात्र संयोग की बात नहीं थी। असफलता का रूपांतरण सफलता में संभव है, यह अपने अनुभव से ज्ञात हुआ था। सिर्फ विकसित ही नहीं, बल्कि विकासशील देश भी भारत के राष्ट्रीय कार्यक्रम में रुचि लेने लगे थे। उनके वैज्ञानिक और राजनीतिक सदस्यों का तुंबा वेली में आना बहुत बढ़ गया था। तुंबा की प्रशिक्षण शाला में प्रक्षेपण विषयक प्रशिक्षण लेने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई थी।

एक समय ऐसा भी था जब मूलभूत जरूरतों की पूर्ति के लिए दौड़-धूप करने वाले भारत जैसे देश को अंतरिक्ष तकनीकी के क्षेत्र में नहीं आना चाहिए, ऐसी सलाह उन्नत राष्ट्रों द्वारा इस देश को दी गई। हमने वह सलाह नहीं मानी, इसके विपरीत हमारी मान्यता थी कि प्रक्षेपास्त्र और उपग्रह की सहायता से प्रगति और लोक कल्याण अधिक तेजी से होता है, इसीलिए भारत को इस क्षेत्र में आना चाहिए। उससे प्राप्त अनेक लाभ हमने प्रत्यक्ष अनुभव किए हैं। भारत के सामर्थ्य का अनुमान अब विश्व को हो चुका था। एक महत्वपूर्ण अंतरिक्ष शक्ति के रूप में इस देश की ओर सम्मान से देखा जाने लगा था। भारत कब क्या चमत्कार दिखा देगा, यह विश्वास पैदा हुआ।

30. बहुउद्देशीय इंसैट

समय किसी की राह नहीं देखता। उसके लिए कोई बाधा नहीं। वह कहीं अटकता नहीं। हमेशा आगे ही आगे बढ़ता रहता है और उसके चलने-बढ़ने में इतिहास लिखा जा रहा होता है। कभी तेजस्वी, कभी शर्मनाक, कभी रोमांचकारी लेकिन इतिहास के इन सभी विशेषणों का अर्थ स्थिर नहीं रहता। भूगोल के आधार पर वह बदल सकता है। एक देश का लज्जास्पद समझा जाने वाला इतिहास दूसरे देश की रोमांचकारी स्मरण गाथा हो सकती है।

इतिहास की कुछ थोड़ी घटनाएं ऐसी होती हैं कि वह सबकी नजर में एक सी होती हैं। विशेषणों का अर्थ भूगोल के अनुसार नहीं बदलता। प्रक्षेपास्त्र का विकास इसी श्रेणी में आता है। किसी के लिए न रुकने वाले समय के सैकड़ों बरसों के प्रवाह में प्रक्षेपास्त्र विषयक उस्तुकता समाप्त नहीं हुई बल्कि बढ़ी ही। उसमें प्रवीणता प्राप्त देशों ने उसमें एक वर्चस्व कायम किया। यह प्रवाह समय के प्रवाह में बदला नहीं, आविष्कार अनेक हुए लेकिन प्रक्षेपास्त्र के विकास की मनोरंजकता सबके दृष्टिकोण में वही रही।

टीपू सुलतान और हैदर अली द्वारा युद्ध में प्रक्षेपास्त्र इस्तेमाल कर अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने का इतिहास हम पढ़ते हैं। जिनके पास असरदार प्रक्षेपास्त्र उनकी विजय, इस बात की वे मिसाल थे। इससे पहले सन् 1232 में कै-फूंग-फू में चीनियों ने मुगल आक्रमणकारियों को प्रक्षेपास्त्र की सहायता से खदेड़ा था। जिसके पास प्रक्षेपास्त्र उसकी विजय का यह एक और उदाहरण है। फिर छह सौ बरस बीते। यूरोप में नेपोलियन का युद्ध आरंभ हुआ। इग्लैंड के विलियम कांग्रेव ने फ्रांस के विरुद्ध प्रक्षेपास्त्र का इस्तेमाल किया। फ्रांस के बुलोन शहर पर उन्होंने प्रक्षेपास्त्र की वर्षा ऐसी की कि अक्षरशः घंटे भर में ही नृत्य-गीत और मेहमानदारी के उत्साह में रमा फ्रांसीसी बंदरगाह प्रचंड अग्नि की ज्वाला में रूपांतरित हुआ। जिसके पास प्रक्षेपास्त्र उसकी विजय इस बात का यह एक और प्रमाण था। प्रक्षेपास्त्र का युद्ध अस्त्र के रूप में प्रयोग इससे सिद्ध हुआ।

इसका और एक उपयोग कांग्रेव ने दर्शाया। वह मनुष्य द्वारा मनुष्य की हत्या के लिए नहीं था बल्कि उसकी जीवन रक्षा के लिए था। घने कोहरे या बर्फ के कारण सागर में फंसे हुए जहाज

प्रक्षेपास्त्र की सहायता से किनारे पर लाने के लिए यह प्रयोग था। मनोरंजन और विध्वंस से पूरी तरह अलग इस कल्याणकारी उपयोग की अनेक दिशाएं स्पष्ट होने लगी थीं। प्रक्षेपास्त्र और उपग्रह की सहायता से कितनी बड़ी मात्रा में लोग कल्याण और प्रगति हो सकती है, इसका अनुमान होने लगा था। सामाजिक परिवर्तन का यह अत्यंत आशादायी वैज्ञानिक साधन था। उसका भरपूर उपयोग राष्ट्र की उन्नति के लिए करना भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का मुख्य बिंदु था।

ये उद्देश्य धीरे-धीरे पूरे हो रहे थे। 20 नवंबर, 1981 के दिन भास्कर-2 भारतीय उपग्रह सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में छोड़ा गया। 440 कि.ग्रा. वजन का यह उपग्रह रशियन इंटरकॉसमॉस रॉकेट की सहायता से रूस की धरती से छोड़ा गया। प्राकृतिक संपदा के अवलोकन के लिए भेजा गया भारत का यह दूसरा उपग्रह था। उसमें स्थापित टेली कैमरे से भारत की भूमि के अनेक चित्र लेकर उसने पृथ्वी पर भेजे।

10 अप्रैल, 1982 के दिन इंसैट-1ए भारत के लिए बनाया हुआ बहुउद्देशीय उपग्रह अंतरिक्ष की भूसापेक्ष स्थिति में छोड़ा गया। अमेरिका में बनाया गया यह उपग्रह अमेरिकन रॉकेट की सहायता से अमेरिका से ही छोड़ा गया। वजन 1200 कि.ग्रा. था। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दूरध्वनि संपर्क, दूरदर्शन से भारत भर में तुरंत प्रसारण और मौसम के अनुमान के लिए बादलों के चित्र आदि उस उपग्रह के उपयोग थे। इंसैट-1 की सारी शृंखला ही बहुउद्देशीय थी। उसमें से 1ए से 1डी ये चारों ही उपग्रह अमेरिका की फोर्ड एअरोस्पेस कॉरपोरेशन द्वारा भारत के लिए बनाए गए थे। ये अमेरिकन डेल्टा स्पेस सेटल आदि रॉकेट की सहायता से छोड़े गए थे।

अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्र द्वारा ऐसे उपग्रह बनाए होने के बावजूद कुछ ही उपग्रहों ने अपेक्षा के अनुरूप काम किया। लेकिन इस शृंखला के कारण भूस्थित एक टन से अधिक वजन के उपग्रह निर्माण की प्रक्रिया को करीब से देखने का मौका भारतीय वैज्ञानिकों को मिला। उसी आधार पर बाद में इंसैट-2 पूर्ण भारतीय उपग्रह की शृंखला अपने ही देश में विकसित की जा सकी।

31. विजय के प्रत्यक्षदर्शी

वह एक विस्तृत द्वीप था। संभवतः द्वीप द्वारा समुद्र तक जल्दी पहुंचे होते, लेकिन कोई वाहन वहां तक ले जाने के लिए कोई रास्ता नहीं था। तीनों तरफ बंगाल की खाड़ी थी और एक तरफ पुलीकट झील। वन विभाग के लोग तालाब के रास्ते से द्वीप पर आते थे। किनारे से काम की जगह आने के लिए और वापस नाव तक पहुंचने तक छह-सात घंटे लगते थे। एक-दो घंटे के काम के लिए भी इतनी उठापटक करनी होती थी। समय, कार्य और गति का गणित फिर यह कहता कि महीने में एक या दो बार से अधिक उस द्वीप पर जाओ ही मत। सौ साल के समय ने यह गणित चुपचाप सुना।

ऐसे ही दिन गुजर रहे थे। एक दिन स्वावलंबी हुए। प्रगति के नए पथ प्रशस्त हुए। 16 साल बाद भारत ने अंतरिक्ष अनुसंधान की शुरुआत की।

और उस मनुष्य रहित अंतरिक्ष का भेद ऐसे ही एक मनुष्य रहित द्वीप से लिया जाएगा यह आभास होने लगा। अंतरिक्ष ही जैसे अपनी मुसीबत इस द्वीप को दे रहा हो। इस द्वीप से भारत का सिर ऊंचा होने वाला था। सीना चौड़ा करके वह अंतरिक्ष देखने वाला था और ऐसा करने वाले पांच छह देशों की श्रेणी में अपनी अस्मिता के साथ खड़ा होने वाला था।

हां, इस द्वीप का नाम था श्रीहरिकोट्टा। सन् 1969-70 के आस-पास साराभाई ने इस द्वीप को चुना। भविष्य के कई मंजिल ऊंचे उपग्रह प्रक्षेपक प्रक्षेपास्त्र यहां से छोड़ने के लिए।

भारत के पूर्वी किनारे का यह द्वीप पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व की ओर घूमने वाले प्रक्षेपास्त्र के लिए लाभदायी था। सुरक्षा की दृष्टि से विस्तृत और बस्ती से दूर यह जगह थी। इस निर्जन, विकट और सहज रूप से लोगों के लिए अंजान इस द्वीप का रूप परिवर्तित होना था। 'शार' केंद्र के रूप में। उसको स्थापित करने की जिम्मेदारी विक्रम साराभाई अंतरक्षि केंद्र को सौंपी गई थी।

यथासमय 'शार केंद्र' विकसित किया गया। विश्वस्तर की प्रमाणित अत्याधुनिक सुविधाएं यहां मुहैया कराई गईं। एसएलवी-3 की पहली असफल और बाद की दो सफल उड़ानें यहां से हुईं। अब ऐसे ही एक दिन का उदय इस द्वीप पर होने वाला था, जो इतिहास रचने वाला था। एक अत्यंत बड़ी

परियोजना सफलतापूर्वक संपन्न होती है कि असफल रहती है, यह उस दिन तय होने वाला था। कारण, उपग्रह प्रक्षेपक वाहन के अगले प्रक्षेपण का समय आ गया था।

22 मीटर ऊंचा 17 टन वजन का एसएलवी-3 बृहदाकार प्रक्षेपक की सीढ़ी पर बैठा चिंतारहित ऊपर की ओर ताक रहा था।

भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी यह प्रक्षेपण देखने स्वयं उपस्थित थीं। हमेशा की तरह देशभर से पत्रकार आए थे। दूरदर्शन की सारी टीम प्रक्षेपण संबंधी प्रत्येक क्रियाकलाप अपने कैमरे में कैद कर रही थी। विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र की परीक्षा की यह घड़ी थी।

17 अप्रैल, 1983 के दिन एसएलवी-3 प्रक्षेपास्त्र ने तीसरी बार देश की प्रधानमंत्री की उपस्थिति में अंतरिक्ष की ओर उड़ान भर ली। नियंत्रण कक्ष से निमंत्रित सारे अतिथि गजब की उत्तेजना लिए बाहर छत पर आ गए। नीले किनारों वाली झालर की नारंगी ज्योति गर्व से बाहर फेंकता, चार खंडों वाला यह प्रक्षेपास्त्र प्रचंड गति से अंतरिक्ष की ओर जा रहा था। सारा आकाश गगनभेदी गर्जनाओं से गूंज उठा। कुछ ही क्षणों में जलकर खाक हुआ पहला खंड उसने समुद्र में फेंका। बाद में देखते-देखते वह दूर और दूर होते-होते अदृश्य हुआ। मुश्किल से 15 मिनट भी न हुए होंगे कि नियंत्रण कक्ष से समाचार मिला 'रोहिणी' उपग्रह एसएलवी-3 प्रक्षेपास्त्र ने अंतरिक्ष की निर्धारित कक्षा में प्रवेश किया।

32. संस्थान का वटवृक्ष

एसएलवी-3 प्रक्षेपास्त्र ने 17 अप्रैल, 1983 को अपना दोषरहित कार्य पूरा किया। देश की प्रधानमंत्री के समक्ष उसने हमारी इज्जत रखी। विगत एक साल से हमारी यह कोशिश जारी थी। सालभर के हमारे सेवाकार्य का यह प्रतिफल केवल 15 मिनट में देकर वह मुक्त हो गया। अमूल्य और अतुलनीय घटना थी यह। कोई एक घटना पूरे देश को बचाती, बनाती और ऊंचा उठाती है। इस प्रक्षेपास्त्र ने देश की इज्जत बढ़ाई और अस्मिता की रक्षा की। आत्मविश्वास को नया बल मिला "यह प्रक्षेपण देश की नई गगनविहारी क्षमता का प्रक्षेपण है" प्रधानमंत्री ने भावनावश होकर कहा "आज अपने देश का मान बढ़ाया है, देश के आत्मविश्वास की रीढ़ और मजबूत की है।"

वह आगे बोल ही नहीं सकीं, मंच से नीचे उतर आईं। भीगी हुई पलकों के किनारे उन्होंने पोंछे, फिर वैज्ञानिकों, तकनीशियनों के समूह में जा मिलीं। हर एक का कुशल-मंगल पूछतीं, अभिनंदन करतीं। वैज्ञानिकों, तकनीशियनों की तालियों और गलबहियों का जैसे सागर उमड़ पड़ा हो। देश की प्रधानमंत्री एसएलवी-3 के जयघोष का हिस्सा थीं। कितनी अनोखी घटना थी। 'रोहिणी' की तरह हम भी अंतरिक्ष में तैर रहे थे।

इस प्रक्षेपण के साथ ही एसएलवी-3 परियोजना सफलतापूर्वक पूरी हुई। पहले असफल प्रयास के बाद केवल साढ़े तीन सालों में लगातार सफल प्रक्षेपण के कारण परियोजना सफलतापूर्वक परिपूर्ण हुई थी। सारी दुनिया में इसकी मिसाल नहीं थी। परियोजना के युवा सहकर्मियों ने बहुत बड़ा काम किया था। परियोजना के युवा संचालक वेद प्रकाश सैंडलश का इस उड़ान की सफलता में बहुत बड़ा योगदान था और विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र के 'शार' केंद्र और अन्य केंद्रों के वैज्ञानिकों से लेकर कैंटीन में काम करने वाले हर एक का भी।

एसएलवी-3 परियोजना की सफलता के साथ ही डॉ. साराभाई का एक वाक्य मुझे स्मरण हो आया, "वैज्ञानिक, प्रशासक और मजदूर प्रक्षेपास्त्र विकसित करने के उद्देश्य से जब एक होते हैं, तब सभी के मिलकर एक दिल से काम करने की एक नई संस्कृति का जन्म होता है।" साराभाई ने जब यह कहा, तब उन्हें अभिप्रेत प्रक्षेपास्त्र से बहुत आगे हम आ चुके थे। उपग्रह प्रक्षेपक वाहन जैसे

चार चरणों में नियंत्रित और मार्गदर्शित अत्यंत बृहद प्रक्षेपास्त्र परियोजना सफलतापूर्वक पूरी हो गई थी। मिलजुलकर काम करने की नई संस्कृति कब की जन्म ले चुकी, यह इस बात की पुष्टि थी। इस संस्कृति के कारण पुराने लोग भी नए रूप से जन्म ले चुके थे। इन्हीं लोगों के भरोसे पर एसएलवी का आकार ढाई गुना, सोलह गुना या चौबीस गुना करना केवल समय का प्रश्न था। आज या कल उसे होना ही था।

उस रात मैंने अपनी पत्नी सुधा से तिरुअनंतपुरम में फोन पर बात की थी, "आपको याद आता है?" उसने पूछा, "आज 17 अप्रैल है, आज आपका सोलहवां जन्मदिन है। आज से पूरे सोलह साल पहले प्रॉपलंट इंजीनियर के रूप में आप इसरो में जन्मे थे।" सच, मैं यह भूल गया था। यानी इस सोलहवें जन्मदिन को। सोलह बरस पहले का 17 अप्रैल मैं भूला नहीं था। वह अभी हाल में घटित मेरे मन में ताजा था और उसे मैं कैसे भूल सकता था। बीते सोलह बरसों का प्रत्येक दिन हमने जीवन के प्रति आसक्ति से जिया था। संस्थान रूपी छोटा पौधा हमारे साथ-साथ विशाल वटवृक्ष में रूपांतरित हुआ था। इस 'हम' में अकेला कोई था ही नहीं। हरएक का घर परिवार, कुटुंब, सहकर्मी सभी उस 'हम' में थे। 'इसरो' नामक वटवृक्ष की झूलती शाखाओं और जड़ों का हम एक हिस्सा थे। उसका जीवन रस चखते, उसे सहारा देते।

33. सपने सच हुए

उस रात मैंने सुधा से फोन पर बात की और उसने जो याद जगाई उससे मेरा मन सोलह बरस पीछे जा खड़ा हुआ। ...मैं अहमदाबाद आता हूं, प्रॉपलंट इंजीनियर के रूप में उपस्थिति दर्ज कराता हूं। अप्रैल की चिलचिलाती धूप, जैसे भी हो थोड़ी बहुत ठंडक का उपाय लोग कर रहे हैं। बड़े न होते हुए भी सरकारी अधिकारी अपना कार्यालय ठंडा किए जाने का अधिकार जता रहे हैं और इधर भारत सरकार के प्रधान सचिव विक्रम साराभाई बगैर सादा पंखा चलाए अपने कार्यालय में काम कर रहे हैं। शांत, हंसमुख और कुर्ता-पाजामा पहने हुए। एक धनी परिवार में जन्मे, अगर मन में ठान लें तो ऐसी छप्पन इमारतें वातानुकूलित करने की सरकारी नहीं, वैयक्तिक क्षमता रखने वाले। लेकिन जो अपने सहकर्मियों को नहीं दे सकता, उसे खुद के लिए भी नकारने वाला यह पर्वत-सा आदमी वैज्ञानिक है। पद और प्रसिद्धि से मिलने वाली सुख सुविधा मानवीय संवेदना के बिना स्वीकार न करने वाला...वैज्ञानिक का काम आम आदमी की जरूरतों से संबद्ध हो ऐसा जिनका मत था...खुद के लिए नहीं लेकिन देश की अस्मिता का सदा चिंतन करने वाला यह एक जाज्वल्यमान देशप्रेमी। ऐसे ही लोगों के बीच इस देश की सच्ची सामर्थ्य छुपी है।

एक मन से सभी ने प्रक्षेपास्त्र परियोजना के लिए काम करने की संस्कृति में नए 'मानवीय' गणित का निर्माण हो रहा था। यह गणित बता रहा था कि दो ही आदमियों का 'सामूहिक' नगर आठ आदमियों की शक्ति के बराबर हो सकता है। फिर हमने समर्थ नेतृत्व किया और हम समर्थ नेतृत्व की बोलती तस्वीर देख चुके थे...। जहां 'पूरा' उसकी कुल टुकड़ी के जोड़-घटाव से अधिक होता है। चक्राकार गति से मानवीय सामर्थ्य बढ़ाने की इस पद्धति में ही भविष्य के लिए कुछ दिशाएं हैं। उनमें से एक स्पष्ट होने लगी थी। भारत जैसे देश ने प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम शुरू किया और प्रक्षेपास्त्र के आकार की चक्राकार पद्धति से बढ़ने की प्रक्रिया निरंतर चलती रही। क्या था इसका अर्थ?

इसका आशय स्पष्ट था। एसएलवी-3 प्रक्षेपास्त्र का आकार दुगना, सोलह गुना या चौबीस गुना भी होना यह केवल समय का मामला था। आज नहीं तो कल वह तो होना ही था। लेकिन कब, यह

सिर्फ ब्यौरे की बात थी।

और वह वैसा हुआ भी। एसएलवी-3 परियोजना पूरी होते-होते विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र में ड्राईंग बोर्ड पर 'ऑगमेंटेड' एसएलवी (ASLV), 'पोलर' एसएलवी (PSLV) जैसे प्रक्षेपास्त्र की रूपरेखा और रचना पर्याय का अध्ययन आरंभ हुआ था। कालांतर में इस नए प्रक्षेपास्त्र का एक स्वरूप बना। हमेशा की तरह सफलता-विफलता का मिश्रित चक्र चालू हुआ। 17 टन वजन के एसएलवी-3 की पार्श्वभूमि पर 39 टन वजन के एसएलवी प्रक्षेपास्त्र की सफलतापूर्वक उड़ान हुई। 280 टन वजन का पीएसएलवी प्रक्षेपास्त्र भी सीढ़ी पर एक बारगी खड़ा तो हुआ। उसकी उड़ान असफल हुई। उसे प्रक्षेपण के लिए तैयार करने में परियोजना की आधी सफलता थी। ऐसा कहना गलत न होगा, क्योंकि बाद में यह प्रक्षेपास्त्र ही सफलतापूर्वक उड़ान भरता रहा। उनकी सफलता की पार्श्वभूमि पर पहले के दिन याद आते हैं। एक समय तुंबा से प्रक्षेपित होने वाले सब प्रक्षेपास्त्र विदेशी थे। उस समय की सुविधा बहुत ही सामान्य थीं। प्रायोगिक साधनों की जोड़-तोड़ नारियलों के पेड़ों के नीचे होती, यह सब याद आता है। उस समय के इस अत्यंत सादे प्रयत्न में भाभा, साराभाई भारत के भविष्य का स्वप्न देख रहे थे। आज सत्रह टन, उनतालीस टन, दो सौ अस्सी टन के वजन के एक से बढ़कर एक प्रचंड प्रक्षेपास्त्र का विकास होने के बाद कितने आगे का भविष्य भाभा, साराभाई ने अचूकता से देखा, इसका अंदाजा होता है। 30 बरस पहले का तुंबा से हुआ प्रक्षेपण उनकी दृष्टि से केवल एक घटना नहीं थी। वह एक नई प्रक्रिया का प्रारंभ था। इस प्रक्रिया की गति में छुपी हुई वीरकथा उन्होंने द्रष्टा के रूप में देखी। साक्षात, विस्तृत और स्वयं अनुभव की हुई और अनुभव कराई हुई। देश का परिवर्तन कर सकने की क्षमता समेटे रोमांचकारी वैज्ञानिक कथा भाभा, साराभाई ने समर्थ दृष्टि से देखी थी। अब इसका स्मरण करना एक अत्यंत सुखद अनुभव था।

34. जनकल्याण के लिए विज्ञान, तकनीकी

उपलब्ध समय की पूर्ति होने तक कार्य विस्तार होता है ऐसा पार्किंसन का एक नियम है। बूढ़ी दादी मां को अपनी पोती को पत्र लिखना है। छोटा पत्र, पंद्रह बीस मिनट में पूरा होने जैसा, लेकिन दादी को आज बस यह एक ही काम है। तब कागज, पेन, लिफाफा खोजने, डाक टिकट हासिल करने और फिर पत्र लिखने में ही उनकी सुबह सारी बीत जाती है।

इस घटना की मजाकिया बात को छोड़ भी दें, लेकिन सच तो यही है कि इसरो की कथा लिखने का काम उपलब्ध समय का सारा हिस्सा निगल लेगा। यह पार्किंसन के नियमानुसार नहीं। कारण कुछ और है। इसरो की कथा केवल विज्ञान और तकनीकी की बात नहीं, यह है एक वीर कथा। काल्पनिक लगने जैसी रोमांचकारी लेकिन काल्पनिक नहीं, यह है लोगों की कथा। उन पर जितना लिखा जाए उतना कम। समय के अभाव में ही कलम को विराम देना पड़ेगा।

इसरो में एक समान ध्येय के लिए नजदीक आए लोग दिल से काम करते हैं। एक नई संस्कृति को वह जन्म देते हैं, जिससे निर्मित होने वाला मानवीय गणित 'जोड़' होता है। 'शेषबाकी' नहीं होता। सामूहिक शक्ति की चक्राकार बढ़त इस प्रक्रिया में अभिप्रेत है। इसमें लोग निश्चय ही महत्वपूर्ण लेकिन अमूक होने ही चाहिए, ऐसी गैरवाजिब जिद भी नहीं। इसीलिए भाभा, साराभाई जैसी स्वयं में मूर्तिमंत संस्था रूपी व्यक्ति के न होने पर भी उनके पीछे छूटी संस्था चलती ही रही है। किस कारण हुआ यह संभव? एक तो संस्थान के विकास के मध्यवर्ती बिंदु के रूप में लोगों की समूहिकता। व्यक्तिगत मनुष्य की प्रगति सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। उसकी कल्पना के अनुरूप ही संस्थान धीरे-धीरे विस्तार ले, यह अपेक्षा थी। अंतर्बाह्य सुशोभित, आधुनिक फर्नीचर से सजा हुआ, वातानुकूलित और संपूर्ण रूप से त्रुटिहीन भवन में किए गए आरंभ में ही उसका अंत समाया होता है, यह साराभाई की धारणा थी। इसीलिए शायद पूर्णतः सुसज्जित भवन बनाकर गद्दीदार कालीनों पर गहराई तक धंसने वाले जूतों के निशान वहां आयातित नहीं थे। लोगों की प्रौढ़ता के साथ भवन की तथाकथित पूर्णावस्था अथवा कालीनों की मोटाई पर विचार हो ऐसी कुल मिलाकर अपेक्षा थी।

इन्हीं सब विचारों की पूर्ति में भारत की सफलता का रहस्य था। आज पृथ्वी के आस-पास चारों

ओर चक्कर लगाने वाले कृत्रिम उपग्रहों की सहायता से विश्व के किसी भी स्थान से हम संपर्क कर सकते हैं। सात समुद्र पार का कार्यक्रम भी अब हम देख सकते हैं। इसके अलावा प्रक्षेपास्त्र का जनकल्याण के लिए भी अनेक रूपों में उपयोग हम देख रहे हैं। आम भारतीय से नजदीकी बनाने का साराभाई को अपेक्षित यह विज्ञान मार्ग आज प्रशस्त हुआ।

पश्चिमी जगत् ने प्रक्षेपास्त्र को एक उपाय के रूप में ही ज्यादा देखा। आधुनिक युद्ध नीति में बम डालने वाले जहाज धीरे-धीरे लुप्त होते गए, क्योंकि उन्हें हवा में नष्ट करना संभव होता है। प्रक्षेपण विज्ञान के स्वरूप में प्रक्षेपास्त्र ने उसका स्थान ले लिया। उपग्रह ले जाने वाले प्रक्षेपास्त्र भारी वजन यहां से वहां ले जा सकते हैं। फिर उसी प्रक्षेपास्त्र को उसी गति से उसी अचूक रीति से विनाशी साधनों के साथ शत्रु के गढ़ में भेजना संभव है, इसीलिए ऐसे प्रक्षेपास्त्र का इस्तेमाल शुरू हुआ।

समस्या इतने पर ही समाप्त नहीं होती। क्षेपणास्त्रों की जगह परखना और उन्हें नष्ट करना शत्रु के लिए संभव है। समुद्र के नीचे गस्त लगाने वाली पनडुब्बियां और उन पनडुब्बियों से प्रक्षेपित होने वाले 'पोलारिस' जैसे एक खंड से दूसरे खंड तक घूमने वाले क्षेपणास्त्र भी पूरी तरह सुरक्षित नहीं हैं। इसका भी जवाब है, हाइड्रोजन बम से सुसज्जित उपग्रह को वायुमंडल में प्रस्थापित करना और यह लटकती तलवार पृथ्वी पर से एक संकेत मात्र से वांछित स्थल पर छोड़ना आज संभव है। लेकिन भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम में सिर्फ विनाश के लिए यह प्रयोग अंतर्निहित नहीं है। शत्रु को भयभीत करने जैसे पश्चिमी देशों के अंतरिक्ष अनुसंधान के उद्देश्य को दरकिनार कर इस विश्व की खोज करना हमारे इस अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य है। ऐसे अधिकाधिक लोक कल्याणकारी कार्यों से भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का संबंध है।

35. सामान्य लोगों की असामान्य कहानी

इसरो की यह कहानी लोगों की कहानी है यह आपने जाना। हमारे, आप जैसे लोग, हजारों सच्चे और सीधे सादे। उनमें सी वी रमण कोई नहीं हो, ऐसी अपेक्षा भी नहीं। यही इस कहानी का सौंदर्य है। एक समान ध्येय के लिए एकजुट हुए हम, आप जैसे ही ये लोग हैं। सांकेतिक अर्थों में इसरो की यह कहानी आपकी, मेरी कहानी है। भौतिक रूप से उसे कह पाना कठिन है, क्योंकि किसी नाम का उल्लेख वास्तविकता के प्रति अन्याय हो सकता है। यह अन्याय जान बूझकर न करना हमारे हाथ में है। इसरो की कहानी बताते वक्त ऐसी वस्तुनिष्ठता रखने का मैंने प्रयत्न किया है। भाभा, साराभाई द्वारा दी गई 'गलती करने की छूट' का उपयोग न करने की कोशिश मैंने की है। इतना ही कह सकता हूं।

इसरो की कहानी केवल विज्ञान और तकनीकी की कहानी नहीं, यह आपने देखा। यह है एक वीरकथा। उसमें जितने लोग, उतने वीर हैं। उन पर जितना लिखा जाए कम है।

यह कहानी लिखते समय इसरो के साथ बिताया समय और मेरी हिस्सेदारी चलचित्र की तरह मेरी आंखों के सामने से गुजरी। नवंबर 1985 में मैंने इसरो में अपने अठारह वर्ष पूरे किए। उनमें से आधे इसरो को समा लेने वाले विक्रम साराभाई केंद्र के प्रमुख के रूप में, छह वर्ष थे। इसरो का सर्वाधिक 'संकट काल' मैंने देखा था। अगस्त 1979 का असफल प्रक्षेपण उसका अत्यंत रौद्र रूप था। लेकिन कालांतर में सारे संकटों का रूपांतर हमने सुअसवर के रूप में किया। विक्रम साराभाई केंद्र देश का दूसरा बड़ा वैज्ञानिक संस्थान बना। अत्यंत कुशल संस्थान के रूप में उसकी विश्वभर में ख्याति फैली। तब तक भारत की पहली ही सरकारी नौकरी के लगातार अठारह वर्ष मैंने तिरुअनंतरपुरम में बिताए थे। मेरी खुद की 'बैटरीज' का नवीनीकरण करने की जरूरत मुझे अनुभव होने लगी थी।

सन् 1985 के आखिर में, दो साल के लिए 'स्टनफर्ड विश्वविद्यालय' में विजिटिंग प्रॉफेसर के रूप में था। 'पॉलिमर विज्ञान विषयक पूरी करना और ऊर्जा' पर किताब लिखने की शुरुआत करना ये दो बातें मैंने तय की थीं। पर यह होना नहीं था।

अमेरिका आकर जैसे-तैसे करीब सात महीने हुए होंगे, एक दिन आधी रात को दिल्ली से फोन आया। भारत सरकार के सचिव के रूप में मेरी नियुक्ति हुई थी। दिल्ली के आदेशानुसार दो हफ्ते में प्रधानमंत्री के विज्ञान और तकनीकी विभाग के सचिव के रूप में मैंने नया कामकाज संभाल लिया। अंतरिक्ष अनुसंधान से मैं दूर हो गया। लेकिन जमीनी विज्ञान, तकनीक के अधिकाधिक करीब होता गया। पांच साल के इस कार्यकाल में भारत के चार प्रधानमंत्रियों के साथ मैंने सचिव के रूप में कार्य किया। उसके बाद दो वर्ष प्रधानमंत्री के विज्ञान सलाहकार के रूप में। शेष सब इतिहास है।

एक अनुभव शायद यहां अप्रासंगिक न होगा। अंतरिक्ष अनुसंधान में मेरी प्रगति का आलेख मुझे दत्तक लिए जाने की घटना नहीं थी। केंद्र सरकार की अठारह साल की सेवा के बाद सीधे भारत सरकार का सचिव होने तक परिश्रम के अलावा दूसरे किसी माध्यम का सहारा मुझे नहीं लेना पड़ा था। इस देश के विषय में आप बहुत कुछ सुनते हैं, उसमें बहुत कुछ सही भी हो सता है, लेकिन यह भी हमेशा ध्यान रखें कि आप तत्पर हों, योग्य हों, अपना जीवन संवारने का आपका निश्चय हो, साथ ही आपका अपनी क्षमता पर भरोसा हो, तो आपको अच्छा अवसर प्रदान करने की भी इस देश में क्षमता है। पर अवसर बिना वजह नहीं मिलता।

उसके लिए परिश्रम करना होता है। अटूट आस्था होनी चाहिए। आत्मविश्वास द्वारा खुद को शांति की भावना से भरना होता है। 'टु स्ट्राइव, टु सीक, टु फाइंड एंड नॉट टु यील्ड' जैसा वाक्य अपना ध्येय वाक्य बनाना होता है। आप सुपात्र हों, तो फिर यह वाक्य आपकी ओर टक लगाए देखेगा, कहेगा, ''उठो, निराश मत हो, संघर्ष करो, अपने ध्येय पर दृढ़ रहो, समर्पण मत करो, हार मत मानो। तुम्हें कोई पराजित नहीं कर सकता, अंततः विजय सिर्फ तुम्हारी है।''

₹ 85.00 ISBN 978-81-237-6203-6

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया